तिलोत्तमा

82

H
811.42
G 959 T

मैथिलीशरण गुप्त

811.42
G959T

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

श्रीराम

Tilottama

तिलोत्तमा

(पौराणिक रूपक)

Maithilisharan Gupta

मैथिलीशरण गुप्त

Sahitya Sadan Jhansi

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

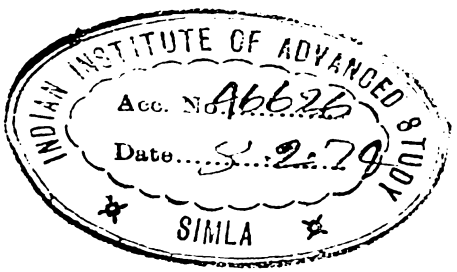

पंचमावृत्ति

सं० २०१६ वि०

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 46626
Date 5.2.79
SIMLA

H
811.42
G959T

मूल्य

मूल्य २-०० से

Library IIAS, Shimla
H 811.42 G 959 T
00046626

श्रीसुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा

साहित्य-मुद्रण चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित।

तथा

साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित।

पात्र-सूची

पुरुष—

इन्द्र	—	देवताओं का राजा
कुमार	—	देव सेनापति
कुबेर, पवन, वरुण, अग्नि	—	प्रधान देवता
दो देव सैनिक		
सुन्द	—	दैत्यों का राजा
उपसुन्द	—	सुन्द का छोटा भाई
शुक्राचार्य्य	—	दैत्यगुरु
विकराल, भयङ्कर	—	दो प्रधान दैत्य
कुछ दैत्य सैनिक		

स्त्रियाँ—

इन्द्राणी	—	इन्द्र की रानी
रति	—	कामदेव की स्त्री
मेनका, रम्भा, उर्वशी	—	अप्सरायें
तिलोत्तमा	—	एक नई अप्सरा

श्रीगणेशाय नमः

तिलोत्तमा

प्रस्तावना

नान्दी

अद्भुत, अपूर्व, अगर्भजा, प्रत्यक्ष अपनी ही कला—
श्री मैथिली के रूप की ज्योतिः शिखा वह निश्चला।
सुरपुर-जयी लंकेश रावण शलभ-सा जिसमें जला,
सत्पथ दिखा कर सर्वदा करती रहे सब का भला॥

सूत्रधार

(इधर उधर देख कर)

बड़े सन्तोष की बात है कि ऐसे सहृदय सज्जनों के सामने हमें अभिनय दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है। किसी ने बहुत ठीक कहा है :—

सहृदय जन ही काव्य का लेते हैं आनन्द।
पीते हैं अलिवृन्द ही अमलकमलमकरन्द॥

इसमें क्या सन्देह ? रसिक जन ही रस का अनुभव कर सकते हैं। जो अरसिक हैं उनके आगे उसका विकास व्यर्थ है :—

चन्द्रकान्त होते द्रवित पकार चन्द्रालोक।
पत्थर नहीं पसीज़ते उसका उदय विलोक॥

(पारिपार्श्विक का प्रवेश)

पारिपार्श्विक

निस्सन्देह हम लोगों का बड़ा सौभाग्य है कि ऐसे सुयोग्य सभ्यों के सामने हमें अपना नाट्य-कौशल दिखाने का आज अवसर मिला है :—

वारिद-वृन्द-समक्ष ही करते नाट्य मयूर।
धूम-पुञ्ज को देख कर हट जाते हैं दूर॥

तो क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आज किस रूपक से इन उदारहृदय सज्जनों को प्रसन्न करने का विचार है ?

सूत्रधार

विचार नहीं, मैंने तो निश्चय कर लिया है कि आज "तिलोत्तमा" नामक नये नाटक का अभिनय किया जाय। मनोरंजन होने के साथ साथ वह शिक्षाप्रद भी है। तुम्हारी क्या राय है ?

पारिपार्श्विक

क्या कहना है, नाटक का मुख्य उद्देश ही यही है कि

उससे मनोरंजन के साथसाथ शिक्षा की प्राप्ति भी हो। कहा भी है—

रहे मनोरञ्जन न क्यों शिक्षा-रहित निबन्ध।
है उस कुसुम-समान ही जिसमें नहीं सुगन्ध॥

अतएव, आशा है, आगतजन उसे बड़े प्रेम से देखेंगे।

सूत्रधार

क्यों नहीं, उपस्थित सज्जनों का एक और कारण से भी उसमें स्वाभाविक अनुराग होगा। क्योंकि तिलोत्तमा गुप्त जी की नई रचना है और सरस्वती के उपासक सहृदय जन उनकी रचनाओं को पहले ही विशेष रूप से अपना चुके हैं—

सुन्दर भाव देख सब कोई उसको अपना लेता है;
पर सम्बन्ध विशेष हृदय को और अधिक सुख देता है।
देख वसन्त-विकास विहङ्गम गाते हैं, सुख पाते हैं;
किन्तु विटप उसको विलोक कर फूले नहीं समाते हैं॥

(नेपथ्य में)

फूले नहीं समाते, सुख हैं अपूर्व पाते हैं;
उत्सव सहर्ष करके सुध भूल भूल जाते।
बाजे बाजा बजा कर जातीय गीत गाते,
उत्साह से हमारी जय हैं सभी मनाते॥

सूत्रधार

(चमत्कृत होकर)

कुशीलवों की कुशलता तो देखो! हमारी बातों में

ही सन्धि खोज कर किस चतुराई से प्रविष्ट हो गये !

अस्तु—

हुआ अकाल कौमुदी नामक यह उत्सव आरम्भ ,
मतवाले-से होकर दानव दिखलाते हैं दम्भ !
गरज रहे हैं ये अकाल के मेघ-समान सकाम ,
आओ, देखें इस घटना का हो कैसा परिणाम ॥

(दोनों जाते हैं)

पहला अङ्क

(विकराल का प्रवेश)

विकराल

फूले नहीं समाते, सुख हैं अपूर्व पाते ;
उत्सव सहर्ष करके सुध भूल भूल जाते ।
बाजे बजा बजा कर जातीय गीत गाते ,
उत्साह से हमारी जय हैं सभी मनाते ॥

क्यों न हो, दानव जाति को ऐसा अवसर भी तो बहुत दिनों में मिला है । अस्तु, मुझ पर दैत्यराजों का जो अनुग्रह, जो स्नेह और जो विश्वास है उसी के कारण उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि मैं घूम घूम कर देखूं कि उनके राजत्व काल के इस पहले महोत्सव के समय उनके प्रति दैत्यकुल के हार्दिक भाव कैसे हैं । मैंने अपना काम तो कर ही लिया है, कुछ देर और इधर उधर घूम फिर कर देखूं और फिर प्रजा का प्रेम स्वामियों पर प्रकट कर दूं ।

(कुछ दैत्यों का प्रवेश)

(गान)

हाँ रे, दिन फिर फिरे हमारे ।
नहीं फिरेंगे अब अनाथ-से हम सब मारे मारे ॥
रहते थे मन मारे अब तक जो हम हिम्मत हारे ।
अब सु-योग पाकर जीवन भर भोगेंगे सुख सारे ॥
उन्नत होकर दिव्य-कुसुम-से तोड़ेंगे हम तारे ।
चमकेंगे बन कर रिपुओं के हृदयों के अङ्गारे ॥
जल जावेंगे हमें देख कर विघ्न आप बेचारे ।
पियो वारुणी, जियो बन्धुवर, जय है हाथ तुम्हारे ॥

विकराल

ये लोग तो मतवाले से हो रहे हैं। ज़रा इनकी बातें भी सुनूँ ।

पहला

वाह भाई, वारुणी की खूब कही ! निस्सन्देह हमारे दिन फिरे हैं। वारुणी का विलास ही कह रहा है कि हमारे दिन फिरे हैं। फिरे तो बहुत दिनों में पर खूब फिरे ।

दूसरा

देख, कहीं लार न टपक पड़े !

पहला

लार तेरी टपके और तेरे बाप की । आज तो राज्य की ओर

से इतनी वारुणी बाँटी गई है कि मैंने पानी के घड़े भी उसी से भर कर रख दिये हैं। क्या तू कोरा ही रह गया ?

दूसरा

कोरा तू रहे और तेरा बाबा। यहाँ तो इतना मांस इकट्ठा कर रक्खा है कि आनन्द से घर बैठे बैठे जीवन भर खाया करूँ तो भी न चुके !

पहला

अरे, मांस तो हाल का ही अच्छा होता है। बासी होने पर उसमें वह मज़ा कहाँ ? मैंने तो निश्चय कर लिया है कि प्रति दिन एक नया प्राणी मार कर खाया करूँगा। इससे शिकार का शौक़ भी पूरा होगा और नित्य नया स्वाद भी मिलेगा। यों तो सभी मांस अच्छे होते हैं पर मनुष्य के मांस को एक भी नहीं पाता। सच तो यह है कि मांस-प्रेमी होकर जिन्होंने नर-मांस का स्वाद न लिया उनका जन्म ही वृथा गया ! अहा ! पर तू बड़ा निरुद्योगी जान पड़ता है जो घर में पड़ा पड़ा सड़ा मांस खाना चाहता है। यह तो आलसी और कायर लोगों के लक्षण हैं।

तीसरा

मेरी तो इच्छा होती है कि सबसे पहले अपने चिरशत्रु देवताओं का गरम गरम खून पियूं।

चौथा

म.....म.....म.....मेरी भी य.....य.....य.....

…ही इ……इ……इइ……च्छा हा……ओ……ओ ……ओ……ती है।

तीसरा

(मुसकराकर)

होनी ही चाहिए ।

दूसरा

बस, बस, बहुत बढ़ना अच्छा नहीं। तू तो उधर देवताओं को देखने जायगा इधर तेरी दानवी को कौन देखेगा ?

पहला

मेरे रहते इसकी चिन्ता नहीं। पर असल में यह किसी देवाङ्गना पर मर रहा है।

दूसरा

हाँ भाई, यह तूने ठीक कहा। और है सो तो है ही, पर शत्रुओं की स्त्रियाँ बड़ी सुकुमार हुआ करती हैं।

पहला

ऐसी सुकुमार कि हवा के झोकों से भी लता की तरह लच जाती हैं।

तीसरा

अरे, तुम लोग पागलों की तरह क्या बक रहे हो। मैं कभी शत्रुओं की स्त्रियों की इच्छा कर सकता हूँ, जिनके पीछे वे अपने कुल-धर्म्म से भी हाथ धोना पड़े। क्योंकि ऐसे तो मिलने से

रहीं, यदि मैं युद्ध में मर कर देवत्व प्राप्त करूँ तो भले ही उनके पाने की आशा कर सकता हूँ ? पर क्या मैं उनके लिए देवत्व प्राप्त करके कुल-कलङ्की हो सकता हूँ ? इस बुरे विचार को भी धिक्कार।

विकराल

(स्वगत)

सौ वार धिक्कार। जो किसी लोभ से शत्रुओं में मिल जाना चाहता है उसके बुरे विचार को सौ नहीं, हज़ार वार धिक्कार ?

पहला

हाँ भाई, तेरा कहना बहुत ठीक है। मैं तो यों ही हँसता था। पर यह तो बता अब देवताओं पर चढ़ाई कब की जायगी ?

तीसरा

जब तक दैत्यराजों के मन में यह बात नहीं आई है तभी तक विलम्ब समझना चाहिए। पर मैं जानता हूँ कि अब अधिक विलम्ब नहीं। शीघ्र ही हमें शत्रुओं से बदला लेने का मौक़ा मिलेगा। क्योंकि इसी लिए तो स्वामियों ने कठोर तप करने का कष्ट उठाया है।

दूसरा

कष्ट ?

तीसरा

तुझे नहीं मालूम ?

पहला

इस समय हमें वारुणी की कृपा से सब मालूम है और कुछ भी मालूम नहीं !

चौथा

म·····म·····म·····मुझे स·····स·····स ·····सब मा·····अ·····अ·····अ लूम है·····

दूसरा

शाबाश, तुझ पर तो वारुणी की पूरी ही कृपा है !

तीसरा

तुम सब मतवाले हो रहे हो। इस समय तुमसे कुछ कहना सुनना व्यर्थ है।

दूसरा

नहीं भाई, नाराज न हो। एक वार बता दे कैसा कष्ट ?

तीसरा

अरे, कौन नहीं जानता कि दैत्यराजों ने विन्ध्याचल पर बरसों निराहार रह कर महा कठिन तप किया है !

दूसरा

फिर ?

तीसरा

उनकी तपस्या देख कर देवताओं की भूख, व प्यास और नींद सब चली गई।

पहला

अच्छा हुआ। कहीं प्राण भी चले जाते तो और अच्छा होता। सब झगड़ा मिट जाता।

दूसरा

तेज न सही तो अब हमारे हाथ से जायेंगे। भला फिर क्या हुआ ?

तीसरा

फिर उन्होंने तप को भङ्ग करने के लिए अनेक अप्सराओं को भेजा।

पहला

(मुहँ लटका कर)

यही तो बड़ा विघ्न है। नहीं तो अब तक मैं भी अपार तप का अधिकारी हो गया होता।

तीसरा

देवता दूसरों की बढ़ती नहीं देख सकते। अच्छा होता जो वे अन्धे होते। हमारी बढ़ती तो वे देख ही कैसे सकते हैं ? हम तो उनके जानी दुश्मन ठहरे।

दूसरा

तब ?

तीसरा

तब अप्सरायें भी हमारे स्वामियों को लुभाने की चेष्टायें करने लगीं। उन्होंने खूब हाव, भाव दिखलाये; कटाक्षों की झड़ी लगा दी; अपने अनुकूल गीत गाये और नाच भी दिखलायें।

पहला

अहा! वह समा मेरी आँखों के सामने-सा आगया। आँखें मानो उनके हाव, भाव और कटाक्षों की लीला देख रही हैं। और कान उत्कंठा उत्पन्न करनेवाले उनके गीत सुन रहे हैं। इधर वसन्त का विकास अलग ही हो रहा है। सुगन्धि-पूर्ण शीतल पवन मन्द गति से चलता हुआ मन को मतवाला बना रहा है। अहा हा, फिर तो स्वामियों ने उन्हें निराश न किया होगा! अहा!

दूसरा

अरे ओ मतवाले के बच्चे! तू क्या बकता है? नशा बहुत चढ़ गया हो तो अभी—

पहला

नहीं भाई, मुझसे भूल हुई। अहा! कैसा दृश्य! क्षमा करो, मैं अब न बोलूँगा। अहा!

दूसरा

देवताओं का जाल ही ऐसा है; और कहने को धूर्त कहते हैं कि यह दृढ़ता की परीक्षा है। खैर फिर क्या हुआ?

तीसरा

फिर क्या होता, अप्सरायें अपना-सा मुँह लेकर लौट गईं, देवता भी सिर पीट कर रह गये। अन्त में स्वयं पितामह प्रसन्न होकर मनमाना वरदान देने के लिए प्रकट हुए।

दूसरा

वे तो पितामह ही ठहरे; वे क्यों किसी का पक्षपात करते? उनके निकट तो हम और देवता दोनों ही समान हैं।

पहला

मैं जान गया। स्वामियों ने उनसे एकच्छत्र राज्य माँगा होगा।

दूसरा

मैं तो जानता हूँ कि उन्होंने अटूट बल माँगा होगा।

(तीसरे से)

क्यों मेरी ही बात ठीक है न ?

पहला

नहीं, मेरी बात ठीक है।

(तीसरे से)

क्यों भाई भयङ्कर ?

तीसरा

(स्वगत)

वरदान की बात तो अभी गुप्त रक्खी गई है।

(प्रकट)

अरे, तुम दोनों क्यों विवाद करते हो ? तुम दोनों की ही बातें ठीक हैं।

(घूम कर और विकराल को देखकर, स्वगत)

अरे, यह तो स्वामियों का प्रिय सहचर विकराल है !

(प्रकट)

जय हो महाशय ! कहिए, क्या आज्ञा है ?

विकराल

कुछ नहीं, में भी उत्सव देखता हुआ इधर आ निकला हूँ। तुम लोग कैसे घूम रहे हो ?

तीसरा

हम लोग भी उत्सव मना रहे हैं। पर ये लोग अधिक मद्यपान करने से अब अचेत-से होते जाते हैं। बात यह है कि बहुत दिनों में इस प्रकार आनन्द मनाने का अवसर मिला है।

विकराल

अवसर के लिए भी तो उद्योग की आवश्यकता हुआ करती है। दैत्य-राजों ने इसके लिए उद्योग किया। फिर अवसर क्यों न आता ?

तीसरा

बहुत ठीक है। धृष्टता क्षमा हो तो क्या मैं यह पूछने का

साहस कर सकता हूँ कि अपने स्वाभाविक शत्रु देवताओं से बदला लेने का भी कुछ उद्योग हो रहा है या नहीं ?

विकराल

क्यों, तुम्हारी इच्छा बदला लेने की है ?

तीसरा

महाश्य, आप यह क्या पूछते हैं ? कौन ऐसा नीच सैनिक होगा जो शत्रुओं से बदला लेने की इच्छा न करेगा ? ऐसे समर्थ स्वामियों को पाकर भी हम लोग यह इच्छा न करें तो समझना चाहिए कि हमारा जातीय जीवन नष्ट हो गया। किन्तु मेरा विश्वास है कि आपके हृदय में भी यही इच्छा है, और होनी ही चाहिए।

विकराल

निस्सन्देह तुम प्रकृत योद्धा हो। तुम्हारी अभिलाषा शीघ्र ही पूरी होगी।

तीसरा

अनुगृहीत हुआ। सच जानिए महाशय, हम लोगों की और कोई अभिलाषा नहीं। हमारी स्त्रियाँ भी उत्सुकता-पूर्वक उस समय की प्रतीक्षा कर रही हैं जिस समय वे अपने हाथों से हम लोगों को शस्त्र दे देकर संग्राम में जाने के लिए बिदा करेंगी।

म म म म मुझ को व व विदा द द दीजे स स सर्व ।
न न निकला ज ज जारहा प प प प पावन पर्व ॥

(पतन)

पहला

घत्तेरे की !

तीसरा

अरे, यह तो गिर पड़ा !

(विकराल से)

अच्छा महाशय, आज्ञा दीजिए तो हम लोग इसे उठा कर ले जायँ ।

विकराल

हा, हाँ इसे अवश्य ले जाना चाहिए ।

तीसरा

जो आज्ञा ।

(मूर्च्छित को टाँग कर सब जाते हैं)

विकराल

(स्वगत)

आज लोगों के मन में यही एक बात समा रही है कि जहाँ तक हो सके शीघ्र ही शत्रुओं से बदला लेना चाहिए । ठीक भी है, क्योंकि अवसर बार बार नहीं मिलता । अच्छा, अब मैं भी दैत्यराजों को सब हाल सुनाकर इस काम से निश्चिन्त हो जाऊँ ।

(घूम कर)

अहा ! यही तो राज-प्रासाद है। अब देवताओं को अपने वैजयन्तधाम की शोभा का गर्व भी छोड़ देना चाहिए।

(उद्देश-पूर्वक)

कौन है, तीक्ष्णदन्त ! स्वामी इस समय कहाँ हैं ?

(कान लगाकर)

क्या कहा, गगनभेदी भवन की अट्टालिका के ऊपर, ऊँचे सुवर्णासनों पर बैठे हुए, दोनों श्रीमान् सहोदर नगरोत्सव का निरीक्षण कर रहे हैं ? अच्छा, तो मैं भी वहीं चलूँ।

(आरोहण करके)

अहा ! ये देखो, सामने ही मानो मेरी एक एक दृष्टि का आकर्षण करते हुए दोनों सहोदर ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जसे सुमेरु पर्वत के शृङ्गों पर दो सिंह बैठे हों।

(सुन्द और उपसुन्द दिखाई देते हैं)

उपसुन्द

भैया, मेरा तो विश्वास है कि दानव जाति का यह उत्साह हार्दिक है।

सुन्द

मैं भी यही समझता हूँ। क्योंकि जो काम अन्तःकरण की प्रेरणा से नहीं किये जाते वे कैसे ही सुन्दर क्यों न दिखलाये जायँ परन्तु रीते बादलों की तरह उनकी निर्जीवता छिपी नहीं रहती।

(देख कर)

वह देखो, विकराल आ रहा है। अभी सब मालूम हो जायगा।

विकराल

(आगे बढ़कर)

स्वामियों की जय हो।

दोनों

विकराल, तू आ गया ? अच्छा, यहाँ आकर बैठ।

विकराल

जो आज्ञा।

(बैठता है)

सुन्द

पहले यह बता, रंग ढंग कैसे हैं ? हम दोनों तेरी ही राह देख रहे थे।

विकराल

सब ठीक है। मैंने पहले ही कह दिया था। किन्तु आप की आज्ञा पाकर कहीं प्रकट और कहीं गुप्त भाव से घूम घूम कर देखा। उससे मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया। यही जान पड़ा कि दैत्यों में ऐसा उत्साह और आनन्द शायद ही पहले कभी दिखाई दिया हो। सारी जाति हृदय से हमारी जय मना रही है। सच तो यह है कि—

चिर दिनों में प्राप्त करके आप-से अधिराज,
पूर्ण अभिलाषा हुई है दैत्यकुल की आज।
मधुर मधु पीकर तथा सजकर नये सब साज,
खिल रहा मधु मास के उपवन-समान समाज॥

सुन्द

बड़ी बात है। हमारा शासक होना सफल हुआ। क्योंकि सभी जनों की प्रीति-पात्रता महा कठिन है,
कुमुदों को प्रिय रात और कमलों को दिन है।
फिर भी शशि-सम वही धन्य समझा जाता है—
तम में भी आलोक अमल जो फैलाता है॥

विकराल

ठीक है, आप जैसे समर्थ स्वामियों से आज दानवजाति सनाथ हो गई है। आप धन्य हैं।

एक प्राण दो देह, पाकर अनुपम आपसे।
सम्प्रति निस्सन्देह, कुल का बल दूना हुआ॥

सुन्द

जाने दे, और कोई सुनाने योग्य बात हो तो सुना। लोगों की कोई विशेष इच्छा मालूम हुई?

विकराल

सबके मन में एक ही बात है।

दोनों

(आग्रहपूर्वक)

वह क्या ?

विकराल

सब यही चाहते हैं कि कब देवताओं पर चढ़ाई करके उनके शोणित-जल से चिर-वैर-वह्नि की शान्ति की जाय।

सुन्द

होनी ही चाहिए:—

दुस्तप तप करके लिया, वर भी जिसके अर्थ।
वह न किया तो क्या किया, क्या हम हुए समर्थ !

(क्षोभ से)

अरे, हम काहे के धन्य हैं जिनके शत्रु सुर-गण अब भी आनन्द से विहार कर रहे हैं। आः !

शत्रुकुल निश्चिन्त है आनन्द से
और हम चिरकाल से हैं मन्द-से।
क्या हुआ कुल का भला हम से भला ?
शत्रु-सुख से और उसका जी जला !

उपसुन्द

भैया, यह बात है तो मुझे आज्ञा क्यों नहीं देते:—

अरि-मांस-पिण्ड पाकर सगर्व
चिर तृप्त अभी हों पितर सर्व।
रिपु-शोणित-जल देकर नितान्त
कर दूं मैं उनकी तृषा शान्त॥

सुन्द

अरे, क्या इसके लिए भी आज्ञा की आवश्यकता है ?
पूछ पूछ कर वीर नहीं व्रत पालते ,
वे अपना कर्तव्य आप कर डालते ।
केवल सिर है, नहीं एक भी बाहु है ,
पर करता खग्रास स्वयं ही राहु है ।।

उपसुन्द

(गदा लेकर)

ऐसा है तो शीघ्र सजग सुर-गण हो जावें,
असुर-वंश से वैर किये का फल वे पावें ।
निज भुज-कण्डू शान्त करूँअब मैं भी रण में ,
चूर्ण करे यह गदा शत्रु-शिर एक क्षण में ।।
निश्चिन्त हमारी जाति हो भोगे सब सुख आज से ,
मैं आप निबट लूंगा अभी सारे शत्रु समाज से ।।

सुन्द

(उत्तेजना से)

शुण्डादण्ड समान और दृढ़ कन्धों वाले .
परम्परागत रत्न जटित भुजबन्धों वाले ।
खीला से ही शृङ्ग जिन्होंने तोड़ दिये हैं ,
विटप मरोड़ मरोड़ होड़कर छोड़ दिये हैं ।।
वे मेरे कर भी शत्रु की समर-पताका चाहते ,
शासन करके सुरलोक का नूतन साका चाहते ।।

विकराल

(आपही आप)

दैत्यराजों की क्रोधाग्नि अब भड़क गई :—
होगये नेत्र कुछ लाल लाल,
हैं फड़क उठे भुजवर विशाल।
उद्दण्ड दण्ड लेकर कराल—
क्या प्रकट हुए दो क्रुद्ध काल!

उपसुन्द

तो अब विलम्ब न करना चाहिए। यह अकालकौमुदी महोत्सव ही हमारी विजय-यात्रा का उत्सव समझा जाय।

सुन्द

ठीक है; विकराल, तू उष्ट्रग्रीव मन्त्री से कह कर ऐसी घोषणा करा दे।

कर के सच्चे शूर-सम कुल का कण्टक दूर।
फिर निश्चिन्त मनायँ हम विजयोत्सव भरपूर॥

विकराल

जो आज्ञा। दानव भी यही चाहते हैं।
वीर केवल वैर लेना चाहते,
स्वामि-हित सर्वस्व देना चाहते।
किन्तु युद्धोत्साह ही अध्यक्ष का—
पृष्ठपोषक है किसी भी पक्ष का॥

सुन्द

ऐसा है तो में अपनी सेना की पृष्ठपोषकता के लिए स्वयं उपसुन्द को उसकी अध्यक्षता का प्रधान पद देता हूँ।

उपसुन्द

मैं कृतार्थ हुआ। विकराल, तू मेरी ओर से सैनिकों पर यह बात प्रकट कर देः—

विश्व में वीरो, हमारा दैत्य-बल विख्यात है,
किन्तु उसकी पूर्णता केवल हमींको ज्ञात है।
शीघ्र ही अरि भी उसे अब युद्ध में पहचान ले,
क्या कठिन है वह भला जो चित्त में हम ठान लें॥

विकराल

सैनिक भी कृतार्थ हो गये।
पाकर आप-सदृश सेनानी—
अद्वितीय योद्धा कुलमानी।
दैत्य वीर अब किसे डरेंगे?
स्वयं मृत्यु का मान हरेंगे॥

सुन्द

किन्तु हमें पहले कपटी देवताओं को ही देखना है। उनका विजय करना हो मानो विश्व विजय करना है। क्योंकि जिनके देवता ही हार जायँगे उनका हारना कितनी बात है?

उपसुन्द

तो चलो यात्रा के लिए सज्जित हो जायँ। अब विलम्ब असह्य है।

विकराल

किन्तु पहले गुरु महाराज का आशीर्वाद लेकर उनकी आज्ञा से कार्य्य करना अधिक अच्छा होगा।

सुन्द

तूने बड़ी अच्छी बात कही। हमें तो आतुरता के कारण इसका ध्यान ही न था। इसीसे तो कुटिल शत्रु यह कहकर हम पर कटाक्ष किया करते हैं कि दैत्य लोग कार्य्य में सहसा प्रवृत्त हो जाते हैं।

उपसुन्द

धूर्त शत्रु चाहते हैं कि हम कार्य्य न करके विचार ही करते रहें और उन्हें आनन्द से विहार करने का अवसर मिलता रहे। किन्तु उनका यह छल अब नहीं चल सकता:—

प्रिय हमको स्वतन्त्र जीवन है,
मान्य एक अपना ही मन है।
आता है जी में जब जैसा—
करते हैं बस हम तब तैसा॥

(सब जाते हैं)

दूसरे अंक का विष्कम्भक

(दो देव सैनिकों का प्रवेश)

पहला

कहो भाई, क्या समाचार हैं ?

दूसरा

क्या कहें, एक ही बात बार बार मन में आती है। भूलोक-वासी कहा करते हैं कि देवताओं ने सारे सुख अपने लिए रख लिये हैं और सारे दुख हमारे लिए छोड़ दिये हैं। वे यह नहीं जानते कि :—

हमीं नहीं बाधाएँ सहते,
सुरगण भी हैं चिन्तित रहते।

और सच तो यह है कि:—

चिन्ता ही करती उद्योगी,
उद्योगी ही हैं सुख-भोगी॥

दूसरा

इसमें क्या सन्देह है:—

जान कर कर्तव्य जो करते उचित उद्योग हैं,
भोगते वे भूमि पर ही स्वर्ग के सुख-भोग हैं।
किन्तु निष्कर्म्मा मनुज जब देखते हैं आपदा—
व्यर्थ ही तब देवकुल को कोसते हैं वे सदा॥

पहला

यही तो बात है। उन्हें सोचना चाहिए कि :—

उद्यम करने से नहीं कठिन एक भी काम।
है दुर्लभ देवत्व भी उसका ही परिणाम॥

दूसरा

पर यह तो बताओ कि आज तुम्हारे मन में बार बार यही बात क्यों उठ रही है ?

पहला

हैं, क्या तुमने नहीं सुना कि ब्रह्मदेव से वर पाकर सुन्द और उपसुन्द नामक दैत्य प्रबल हो उठे हैं। इसलिए दानवों ने शीतकाल के अनन्तर साँपों की तरह फिर अपना सिर उठाया है।

दूसरा

तो इससे क्या हुआ ? उनका सिर फिर कुचल दिया जायगा।

पहला

यही तो कठिनता है। उन्होंने बड़ा उग्र तप किया है! इसलिए वर भी उन्हें मनमाना ही मिला होगा।

दूसरा

किन्तु विधाता ने उन्हें ऐसा वर दिया ही क्यों होगा जिससे वे सदैव मनमाना अत्याचार करते रहें?

पहला

यह ठीक है, परन्तु उनके तप का फल तो उन्हें देना ही पड़ा होगा। एक बात और भी है:—

दान-समय दानी कभी नहीं सोचते स्वार्थ।
पक्ष छोड़ कर पात्र को देते सभी पदार्थ॥

दूसरा

(चिन्तित होकर)

तो भाई, अब क्या होगा?

पहला

जो कुछ होगा अच्छा ही होगा। पर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि कब और कैसे होगा। इसीसे चिन्ता है।

दूसरा

निस्सन्देह चिन्ता की बात है।

पहला

जो हो, शत्रु हमारा कर कुछ नहीं सकते।

(नेपथ्य में)

सब सावधान होकर देवेन्द्र की आज्ञा सुनो।

दोनों

(चौंक कर)

हम लोग सुनने के लिए प्रस्तुत हैं।

(नेपथ्य में)

महाराज आज्ञा देते हैं।

दोनों

प्रभु क्या आज्ञा करते हैं ?

(नेपथ्य में)

कदाचार ही सदाचार है जिनके लेखे,
केवल अपना स्वार्थ सार है जिनके लेखे।
इसीलिए जो सहज शत्रु हैं सदा हमारे—
और युद्ध में बार बार जो हमसे हारे।
चींटीं के सम वे दैत्य फिर सम्प्रति हुए सपक्ष हैं,
हम सजग रहें उनके लिए जो दीपक-सम दक्ष हैं॥

दोनों

महाराज की जो आज्ञा। हम लोग सर्वथा सजग हैं।

(घूम कर जाते हैं)

दूसरा अङ्क

(इन्द्र और कार्तिकेय का प्रवेश)

कार्तिकेय

आपके कष्ट उठाने की मैं कुछ भी आवश्यकता नहीं समझता।

इन्द्र

कुमार, तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु इस युद्ध में सम्मिलित होने की मेरी बड़ी इच्छा है। क्योंकि:—

बहुत दिनों से निरुपयोग से अस्त्र पड़े हैं,
पाकर अवसर आज व्यग्र हो रहे बड़े हैं।
वह प्रयोग-कौशल्य कहीं कर भूल न जावें—
इससे वे भी आज उसे फिर नया बनावें।
मैं देखूँ, रिपुओं ने इधर कितना बल-सञ्चय किया?
आखेट-भाव से ही सही, जाना निश्चय कर लिया॥

कार्तिकेय

वीर रस के अधिष्ठाता देवराज का ऐसा कहना स्वाभाविक

ही है। परन्तु मैं फिर भी यही कहूँगा कि आपको का उठाने की आवश्यकता नहीं :—

जब तक कोई शत्रु न दीखे वृत्र-तुल्य बलधाम,
तब तक देवराज के आयुध क्यों न करें विश्राम ?
सुरकुल को जैसा प्रसङ्ग यह आज हुआ है प्राप्त,
उसके लिए षडानन के ही आयुध हैं पर्याप्त ॥

इन्द्र

यह क्या, षडानन के आयुध तो ऐसे हैं कि:—

जीते जब सब लोक तारकासुर ने बल से,
मेरे भी शस्त्रास्त्र हो गये थे निष्फल-से।
देव-कार्य्य उस समय तुम्हींने सिद्ध किया था,
जो अविद्ध था उसे स्वयं ही विद्ध किया था।
देवों की आशायें सभी लगी तुम्हींसे हैं सदा,
तुम-सा सेनापति ही उन्हें जयी करेगा सर्वदा ॥

कार्तिकेय

देवराज का ऐसा कहना अनुग्रह मात्र है। देवकुल की जं कुछ सेवा मुझसे हो सके वही मेरे लिए गौरव का विषय है

इन्द्र

तुम्हारा ऐसा कहना उचित ही है।
वही धन्य है सृष्टि में जन्म उसीका सार।
हो कुल, जाति, समाज का जिससे कुछ उपकार ॥

तो तुमसे अधिक धन्य और कौन हो सकता है ? देवकुल की रक्षा का भार विशेषतया तुम्हारे ही ऊपर है।

कार्तिकेय

मुझ पर बड़ा अनुग्रह हुआ। देवकुल अपनी रक्षा करने के लिए आप ही समर्थ है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ।

इन्द्र

(मुसकरा कर)

बहुत विनय रहने दो। अभी शत्रुओं का सामना करना है।

कार्तिकेय

(मुसकरा कर)

किन्तु इस समय तो स्वामी के सामने हूँ।

इन्द्र

(आनन्द से)

अच्छा देवसेना सज्जित हो गई ?

कार्तिकेय

जी हाँ,

सज्जित और समर्थ, सुर-सेना शस्त्राग्नि-युत।
असुरेन्धन के अर्थ, उत्सुक है उत्साह से ॥

इन्द्र

ऐसा ही हो। मैं एक बार उसका निरीक्षण करके वीरों का उत्साह देखूंगा।

कार्तिकेय

जो आज्ञा। इससे उसका उत्साह और भी ब
तब तक इस बात की सूचना देकर मैं उसे आनन्दित

इन्द्र

अच्छी बात है। मैं भी अभी पहुँचता हूँ।

कार्तिकेय

जो आज्ञा।

इन्द्र

(स्वगत)

सुना है, इस बार दैत्यों में भी बड़ा उत्साह
है। यह तो ज्ञात हो ही चुका कि सुन्द और उपसुन्द
से कोई विशेष वर प्राप्त किया है और यह भी या
कि वर की बात अभी गुप्त रहे। परन्तु इससे क्या,

जब तक मेरे हाथ में है वह कुलिश कठोर।
असुर देख सकते नहीं सुर-लक्ष्मी की ओर॥

(गर्वपूर्व

(इन्द्राणी का प्रवेश)

इन्द्राणी

स्वामी की जय हो।

इन्द्र

(देख कर)

अहा ! प्राणेश्वरी शची है। प्रिये !

तेरा जय कहना मुझे है अति ही प्रिय आज।
क्योंकि सजाये जारहे उसके ही सब साज॥

आओ, यहाँ बैठें।

(दोनों बैठते हैं)

इन्द्र

इस समय तेरा आना सचमुच बड़ा ही मङ्गल-सूचक है।
मैं आ रहा था आप तुझसे भेंट करने के लिए,
तब तक स्वयं तूने यहाँ आकर मुझे दर्शन दिये।
ऐसे शकुन से क्यों न मेरा मन सुमन जैसा खिले ?
क्या पूछना है फिर भला यदि इष्ट ही आकर मिले !
पर यह तो बतला:—
कैसे तूने है किया आने का आयास ?
कुण्ठित क्यों है चन्द्र-से मुख का हास-विलास ?

इन्द्राणी

रहने दो, प्रत्येक समय विनोद अच्छा नहीं लगता।
पहले यह कहो कि तुम किस लिए मेरे पास आना चाहते थे ?

इन्द्र

किन्तु यही प्रश्न पहले मैं तुझसे कर चुका हूँ।

इन्द्राणी

नहीं, पहले तुम्हें बताना होगा।

इन्द्र

यह तो अन्याय है।

इन्द्राणी

तुम स्त्री-जाति के हृदय की आकुलता पर विचार करो तो जानोगे कि यह न्याय है या अन्याय।

इन्द्र

जिस बात के लिए स्त्री-हृदय आकुल हो सकता उसके लिए क्या पुरुष-हृदय नहीं आकुल हो सकता है?

इन्द्राणी

इस बात को तो वही जाने परन्तु मैं वही कहती जो मेरा मन कह रहा है।

इन्द्र

जहाँ मन का न्याय है वहाँ कुछ कहना ही व्यर्थ है

इन्द्राणी

परन्तु यह तो कहना ही पड़ेगा कि तुम मेरे निक किसलिए आ रहे थे।

इन्द्र

मेरे आने का स्वयं तू ही हेतु विचार।
अयस्कान्त के निकट क्यों खिच जाता है सार?

इन्द्राणी

शत्रुओं की तो चढ़ाई हो रही है और तुम्हें हँसी सूझ रही है ! मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

इन्द्र

अरे, क्या तुझे यही आशङ्का है ?
है यह नूतन सिद्धि-योग ही मुझको,
आता था मैं ही जिसे सुनाने तुझको।
हो एक जय-श्री और सपत्नी तेरी,
पर है वह ही एकान्त सङ्गिनी मेरी ॥

इन्द्राणी

इस साहस को तो देखो, सामने विपत्ति और यह परिहास ! किन्तु मेरे निकट तो यह उपहास ही है।

इन्द्र

तू जिसको आपत्ति समझ सविमर्ष है—
वह यथार्थ ही वीर-जनों का हर्ष है !
प्रिये, व्यर्थ ही तुझे हो रही भीति है,
आशङ्का ही हाय ! प्रीति की रीति है ॥

इन्द्राणी

तो क्या तुम्हें कुछ भी आशङ्का नहीं ?

(मुसकरा कर)

है मेरे भी चित्त में यह आशङ्का एक—
तू न रूठ बैठे कहीं ठान मान की टेक !

इन्द्राणी

फिर वही बात ! मानो मारकाट करना कोई अच्छा काम है, जिसका ध्यान ही तुम्हें गन्द्द किये देता है !

इन्द्र

मारकाट हम करना चाहते हैं या शत्रु कराना चाहते हैं ? दुष्ट दैत्यों का ही यह स्वभाव है कि वे उत्पात करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं !

इन्द्राणी

पर तुम इतने प्रसन्न क्यों हो ?

इन्द्र

अनाचारी विपक्षियों के नाश का अवसर पाकर भला कौन वीर प्रसन्न न होगा ?

इन्द्राणी

किन्तु सुना है, शत्रुओं ने इस बार कोई विशेष वर प्राप्त किया है।

इन्द्र

इससे क्या ? अनाचार तो उनका कुलव्रत ही है और किसी गौरव को पाकर उसे संभालना भी तो सहज नहीं होता। जो हो—

तेरा ऐसा सदय और सुकुमार हृदय है—
होता जिससे तनिक तनिक में तुझको भय है।

क्षय-सूचक ही किन्तु शत्रुओं का समुदय है,
यह निश्चय है, जहाँ धर्म्म है वहीं विजय है ॥

इन्द्राणी

न जाने इस देवासुर-संग्राम की समाप्ति कब होगी।

इन्द्र

विकृत दानवी प्रकृतियाँ जब तक न हों उदार।
तब तक कैसे कलह का होगा उपसंहार?

इन्द्राणी

न कभी शत्रुओं की प्रकृतियाँ पलटेंगी न युद्ध रुकेगा।

इन्द्र

इसमें क्या सन्देह है—
जब तक पशु-प्रवृत्तियाँ छोड़ेंगे न सपत्न।
तब तक शोधन का यही—आयोधन है यत्न ॥

इन्द्राणी

किन्तु जब से मैंने शत्रुओं के वर की बात सुनी है तब से मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है!

इन्द्र

अयि भीरु!
करती है क्यों अपने मन में तू ऐसी चिन्ता भारी?
अतुल अमर सेना है मेरी, मैं हूँ विदित वज्रधारी।
नमुचि, जम्भ, वृत्रादिक वैरी मैंने ही सब मारे हैं,
जब जब चक्र रचे असुरों ने तब तब मुझसे हारे हैं ॥

इन्द्राणी

यह मैं जानती हूँ कि अन्त में शत्रुओं का ही पराभव होगा। किन्तु ऐसा न हो कि पहले हमारे लिए कोई चिन्ता की बात हो जाय, इसी आशङ्का से मेरा मन अधीर हो रहा है।

इन्द्र

(स्वगत)

इसे कैसे समझाऊँ ?

(प्रकट)

मान लो कि पहले हमें कुछ चिन्तित भी होना पड़े पर उसका परिणाम भी हमारे लिए कुछ विशेषतापूर्ण ही होगा—

जब वृत्रासुर ने वर पाया—
और अधिक उत्पात मचाया।
तब भी शत्रु-समाप्ति हुई थी,
हमें वज्र की प्राप्ति हुई थी।

इसलिए तुम चिन्ता न करो। शीघ्र ही युद्ध से निबट कर हम नन्दनकानन में आनन्द-पूर्वक विहार करेंगे।

इन्द्राणी

जिन स्वयम्भू भगवान् ने दुष्ट दानवों को वर-प्रदान किया है वही देवकुल का मङ्गल विधान करें; यही मेरी प्रार्थना है।

इन्द्र

अवश्य करेंगे। इसमें सन्देह ही क्या है ?

सुकृत-प्रिय हैं सदा विधाता,
होंगे क्यों न हमें शुभदाता ?
दुष्ट दैत्य भी तप करने पर—
पाते हैं उनसे अभीष्ट वर ॥

इन्द्राणी

अब मेरा भय दूर हुआ।

इन्द्र

होना ही चाहिए :—
जब तक सुकृतों का फल जय है,
और दुष्कृतों का फल क्षय है।
तब तक हमको किसका भय है ?
सभी ओर सुख का सञ्चय है ॥

इन्द्राणी

ठीक है। हमारी सेना तो सज्जित ही होगी ?

इन्द्र

अहा ! अच्छी याद दिलाई। मैं सुर-सेनापति से अभी उसका निरीक्षण करने के लिए कह चुका हूँ।

इन्द्राणी

(गद्गद होकर)

मैं अबला ऐसे समय कहूँ और क्या नाथ !
मेरे मन की कामना रहे तुम्हारे साथ ॥

इन्द्र

यह मेरा सौभाग्य है। तो अब:—
तेरे विचलित चित्त से मिल कर मेरा चित्त।
प्रेरित रहे सदैव फिर सत्वर मिलन निमित्त॥

(प्रेम-पूर्वक देखते हुए प्रस्थान)

इन्द्राणी

(हृदय पर हाथ रख कर)

अरे हृदय, तू फिर धड़कने लगा ? प्राणेश्वर के जाते ही क्या उनका दिया हुआ प्रबोध भी चला गया ? हाय ! अब क्या करूँ ?

(नेपथ्य में)

बलाहक ! बलाहक ! क्या कहा ?
मुँह फैलये हुए भयङ्कर दाँत निकाले,
आ पहुँचे हैं दैत्य महा मद से मतवाले।
पड़ कर मानो किसी प्रबल आँधी के पाले—
उड़ते जड़ से उखड़ पेड़ बहु काँटों वाले !
अच्छा,
तो मेरी भी अस्त्राग्नियाँ उनके लिए प्रचण्ड हों,
जलने के पहले ही यहाँ उनके सौ सौ खण्ड हों।

इन्द्राणी

(चौंक कर)

अरे, यह तो वत्स जयन्त बोल रहा है। अब आयुधों की आँधी में विलम्ब ही क्या रहा। यह भी मुझसे अभी बिदा माँगेगा। हाय !

त्रैलोक्य में कर्त्तव्य की वह प्रेरणा ही धन्य है—

कर दे विवश जो प्रेम को भी कौन ऐसा अन्य है ?

होकर उसी के वश हमें भी—रख हृदय पर हाथ ही—

हैं भेजने पड़ते समर में पति तथा सुत साथ ही ?

तो चलूं, मैं स्वयं ही चल कर उसे आशीर्वाद दूं।

(प्रस्थान)

तीसरा अङ्क

(कुबेर की परिचर्य्या करते हुये वरुण का प्रवेश)

वरुण

यक्षराज, सावधान हो, सावधान हो। हा विधाता! तुम्हारा यह कैसा विधान है? लोकेश! तुम्हारी यह कैसी लीला है? देवकुल को विपन्न करने के लिए ही क्या तुमने सन्तुष्ट होकर दुष्ट दानवों को अपने वरदान से इस प्रकार परिपुष्ट किया है? इन नीचों के आघातों से राजराज धनेश्वर की यह दशा! हम देवता अमर हैं, नहीं तो आज न जाने कैसा अनर्थ हो जाता। अलकेश्वर, सावधान हो, सावधान हो। बोलो तो।

(वस्त्र से व्यजन)

कुबेर

(सचेत होकर)

मैं कहाँ हूँ?

वरुण

आप चिन्ता न कीजिए। आपको अचेत देखकर मैं युद्ध-

क्षेत्र के समीप ही, इस निर्जन और छायावाले स्थान में ले आया हूँ।

कुबेर

अहा ! क्या वरुणजी हैं ?

वरुण

हाँ, मैं आप का बन्धु हूँ। देवराज ने मुझे ही आप की परिचर्य्या का काम दिया है। अब आप कैसे हैं ?

कुबेर

भाई, मुझसे क्या पूछते हो ?

देवभूमि पर हो रहा दैत्यों का उत्पात।
अपने मन से पूछ लो मेरे मन की बात॥

वरुण

सो तो ठीक है। परन्तु आप का शरीर अब कैसा है ?

कुबेर

अच्छा है। पर अपमान की ज्वाला से जल रहा है। युद्ध की अवस्था कैसी है ?

वरुण

प्रलय-मेघ जैसे क्षण क्षण में—
गरज रहे हैं योद्धा रण में।
अविदित है जय और पराजय,
रुधिर-वृष्टि होती है निश्चय॥

कुबेर

तो चलिए, हम फिर संग्राम करने चलें।

वरुण

आप क्षण भर और विश्राम कर लीजिए।

कुबेर

नहीं मैं अच्छा हूँ। इस समयः—

प्रकुपित महा रिपु-रोग है,
उद्योग का ही योग है।
अवसर नहीं विश्राम का,
प्रत्येक पल है काम का॥

(नेपथ्य में)

हाय! हाय!
कैसी विपत्ति यह देव-भूमि पर टूट पड़ी,
सब ओर लूट को दैत्यचमू है छूट पड़ी!

दोनों

(चौंक कर)

अरे, क्या कहा?
क्या आज हमारे आयुध सारे व्यर्थ हुए,
अथवा समर्थ भी क्या अब हम असमर्थ हुए!

(नेपथ्य में)

हुई हाय! क्या देव-भूमि दानव-धरा,
समर-श्री को सहठ शत्रुओं ने हरा!

दोनों

(झपटते हुए)

नहीं, नहीं, ऐसा न हो सकेगा कभी ,
आकर ये हम उन्हें देखते हैं अभी ॥

(शीघ्रता से उपसुन्द का प्रवेश)

उपसुन्द

अरे कायरो, कहाँ जाते हो ?
ठहरो, ठहरो, मुझको ही तुम अपना बल दिखलाओ ;
दैत्य-वंश से वैर किये का फल तो लेते जाओ।

(दोनों क्रोध से लौट कर)

कुबेर

अरे अधम, तू आप आगया ! आ, मैं तुझे बताऊँ—

वरुण

तृण-सा मान वहा कर तेरा, तुझे नरक पहुँचाऊँ !

उपसुन्द

अरे, क्या तुम कुबेर और वरुण हो। तुम दोनों कि वीरता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा की तुम संग्राम-भूमि छोड़कर इस प्रकार छिपे छिपे फिरते हो !

दोनों

रे नीच ! हमारी वीरता का पूरा परिचय तुझे अभी मिला जाता है।

उपसुन्द

मैं भी यही चाहता हूँ। अग्नि, मरुत् और यम आदि देवताओं की वीरता तो मैंने देख ली। तुम्हें भी देखे लेता हूँ। किन्तु रे कायर कुबेर ! क्या तू मेरे प्रहार को भूल गया ? मुझे तो यही आश्चर्य है कि तू अभी तक जीवित है !

कुबेर

तुझ जैसे दुराचारियों को दण्ड देने के लिए मैं सर्वथा अमर हूँ।

उपसुन्द

अच्छा रे धन के साँप ! मैं अभी तेरा सिर कुचलकर देखता हूँ कि तूने हमारे लिए कितना धन इकट्ठा किया है।

कुबेर

रे दुर्मुख दैत्याधम ! जब तक मेरे गदा-प्रहार से तेरा मुँह नहीं मिट जाता तब तक और क्षण भर प्रलाप कर ले।

उपसुन्द

मैं अभी तेरा प्रहार देखे लेता हूँ। तू पूर्ण बल से वार कर और रे अश्रुधर्म्मा, दया के पात्र वरुण ! तू भीः—

पहले वार करो तुम, आओ ;
जो कुछ हो सो कर दिखलाओ !
जो मेरी बारी आवेगी—
मन की मन में रह जावेगी ॥

वरुण

यह तो दानवों ही को रीति हैं :—

जो अनेक जन एक पर मिलकर करें प्रहार।
ने उनके वीरत्व को मार वार धिक्कार॥

कुबेर

और तेरे लिए तो मैं अकेला ही बहुत हूँ।

उपसुन्द

अच्छा, एक एक ही सही। एक साथ न मरकर अलग अलग मरो। पर एक साथ लड़ते तो मुझे भी कुछ विक्रम प्रकट करने का अवसर मिलता।

कुबेर

जो मरने के समीप होते हैं वे इसी तरह जो मुँह में आया बकते हैं। तेरे मरने में अब बिलम्ब नहीं। युद्ध-भूमि तेरे शव की प्रतीक्षा कर रही है।

उपसुन्द

तू भूलता है। चलकर देख, वह मेरे शव को प्रतीक्षा कर रही है या तेरे की।

(दोनों जाते हैं)

वरुण

(स्वगत)

अरे, कुबेरजी चले गये ! मैं भी चलकर शत्रुओं का संहार करूँ।

(कुछ दूर सुन्द का प्रवेश)

सुन्द

रक्त, रक्त, बस मुझे रक्त ही इष्ट है,
कब तक ? जब तक शत्रु-चिह्न अवशिष्ट है।
मेरे कर से नहीं किसीका त्राण है,
जो सम्मुख हो आज वही निष्प्राण है॥

अरे, शत्रु तो पीठ दिखाकर भाग रहे हैं इसीलिए तो वर की बात गुप्त रक्खी गई थी कि वे संग्राम में कुछ तो हमारी लालसा की तृप्ति होने दें। यदि उन्हें पहले से ही हमारी अजेयता का पता लग जाता तो वे युद्ध किये बिना ही छिप जाते। कायरो ! धिक्कार है तुम्हारी भीरुता को।

मरते हो क्यों पीठ पर सहते हुए प्रहार।
क्षण भर भी तो सामने झेलो मेरा वार॥

वरुण

(आप ही आप)

आह ! विदित हो गया। वर के गुप्त रखने की बात भी प्रकट हो गई। यह साहस दैत्यों के ही योग्य है। परन्तु इससे क्या, अजेय होकर भी यह अमर नहीं। मैं ही आज इसका वध करूँगा।

सुन्द

अरे, यहाँ तो कोई दिखाई ही नहीं देता। जिधर जाता हूँ उधर से ही शत्रु भाग जाते हैं।

वरुण

(गरज कर)

रे दुःशील दैत्यकुल-कलङ्क ! इधर आ। मैं अभी तेरी रण-तृष्णा दूर किये देता हूँ।

रे खल ! डूबा समझ वंश भर तू अब अपना,
करता हूँ मैं भङ्ग अभी तेरा यह सपना।
विद्युल्लेखाकार पाश यह विश्रुत मेरा—
नाश करेगा अभी विषम विषधर-सा तेरा॥

सुन्द

(देख कर)

अरे, क्या तू वरुण है ? अच्छा, वरुण ही सही :—

पानी, पर्वत, पवन, हुताशन, कोई हो, सम्मुख आओ ;
यम का यम मैं आ पहुँचा हूँ; जो कुछ हो, कर दिखलाओ।
प्रतिहिंसा, बस प्रतिहिंसा ही, किये हुए का फल पाओ ;
आज कुशलता नहीं किसी की सावधान सब हो जाओ॥

वरुण

अरे, मैं तुझ पर क्या बल दिखलाऊँ ? जिस वर के बल से तू गरज रहा है, क्या तू नहीं जानता कि वह भी देव-प्रसाद

का ही फल है ? इतना बल तो हम लोग सहज ही दान कर दिया करते हैं !

सुन्द

अरे वाचाल ! भगवान् लोकेश को अकेला तू कैसे अपना कहता है ? वे तो सभी के पितामह हैं और यदि ऐसा ही है तो वर मैंने अपने तप के प्रभाव से प्राप्त किया है। अपने ही पुरुषार्थ के प्रताप से अभी संग्राम में तेरा नाम भी मिटाये देता हूँ।

वरुण

तो रण-योग्य भूमि पर चलता क्यों नहीं ? परन्तु स्मरण रख कि सब के पितामह होकर भी प्रजापति देवता ही हैं।

(दोनों जाते हैं)

(पवन, अग्नि और कार्तिकेय के साथ इन्द्र का प्रवेश)

इन्द्र

(क्रोधपूर्वक)

अब तो नहीं सहा जाता :—
देव-भूमि पर दैत्य-दस्यु हैं लूट मचाते,
करके भाराक्रान्त उसे पीड़ा पहुँचाते।
वर-गर्वित हो विकृतवृत्तियाँ हैं दिखलाते,
तुच्छ जानकर नहीं ध्यान में हमको लाते।
तो फिर क्यों उन पर वज्र का करूँ प्रयोग न मैं अभी,
गिरि-पक्ष-समान विपक्ष भी फिर न पनप पावे कभी ॥

पवन

आप मुझे ही आज्ञा क्यों नहीं देते ?
अचल भाव से खींच कर मैं ही श्वास-समीर !
कर दूँ रिपुओं के अभी जीवन-हीन शरीर ॥

अग्नि

यह तो उन दुरात्माओं के लिए यथेष्ट दण्ड न होगा । आप मुझे आज्ञा दीजिए:—

प्रकट रूप रख कर मैं जाऊँ,
उनको जीता हुआ जलाऊँ !
भून भून कर भस्म बनाऊँ,
देव-वीर्य्य सब को दिखलाऊँ ॥

(नेपथ्य में)

शान्त हूजिए, शान्त हूजिए ।

कार्तिकेय

(चौंककर, क्रोध से)

कौन शान्ति का उपदेश देता है:—
क्रान्तिकारियों की प्रथम मिट जाने दो भ्रान्ति !
श्रान्ति-रहित फिर आप ही हो जावेगी शान्ति ॥

इन्द्र

यही बात है:—
धिक् है रिपु रहते हुए बैठें जो हम शान्त !
करके उनका अन्त ही होंगे अब विश्रान्त ॥

(कुबेर और वरुण का प्रवेश)

देवराज, शान्त हों, शान्त हों।
शत्रुनाशन के लिए हम हैं अवश्य समर्थ,
पर वृथा इस रीति से होगा अतीव अनर्थ।

इन्द्र

हैं, यक्षराज! यह क्या कहते हो?
रोकते हो क्यों हमें रिपु-नाश से इस वार?
देखते क्या हो नहीं उनका यथेच्छाचार?

कुबेर

देवराज शान्त हों, शान्त हों।
हैं अमोघ वज्रादि अस्त्र विख्यात हमारे,
जा सकते यों नहीं वैरी भी मारे।
फल यह होगा—प्रलयकाल समुपस्थित होगा,
अहित भाव को छोड़ न इससे कुछ हित होगा॥

इन्द्र

हम नहीं समझे, स्पष्ट कहिए।
कीलक मन्त्र समान गूढ़ हैं वचन तुम्हारे,
विवश भुजङ्ग-समान हुए हैं हाथ हमारे।
उधर भेक-सम नीच शत्रु हैं रोष दिलाते,
होकर भी हम सरल नहीं कुछ करने पाते॥
इसलिए कहिए, शत्रु क्यों नहीं मारे जा सकते?

कुबेर

आप शान्त हों। मैं सब सुनाता हूँ।

सब

हम सब शान्त हैं। आप कहिए।

कुबेर

शत्रु इसलिए नहीं मारे जा सकते कि उन्होंने वर ही ऐसा प्राप्त किया है जिससे उन्हें कोई नहीं मार सकता।

इन्द्र

यह आपने कैसे जाना ?

कुबेर

युद्ध के समय बातों ही बातों में उपसुन्द के मुँह से रहस्य निकल पड़ा।

इन्द्र

यह मैं नहीं मानता। भगवान लोकेश ऐसा वर किसी को नहीं दे सकते। वे दैत्यों को अमर क्यों बनाने लगे ?

कुबेर

परन्तु उसके कहने से यह कब सिद्ध होता है कि वे अमर हैं ?

इन्द्र

तो फिर किसके द्वारा उनका अन्त हो सकता है ?

कुबेर

यह भी मालूम हो गया है।

इन्द्र

मालूम हो गया है ? बड़ी बात हुई। शीघ्र कहिए।

कुबेर

मेरे साथ युद्ध करते समय जब वह बहुत क्षुब्ध हुआ तब मैंने कहा—रे दुष्ट, अब तेरी रक्षा नहीं, मैं अभी तुझको मारता हूँ।

इन्द्र

तब ?

कुबेर

तब क्रोध के कारण वह अपने आप को भूल कर कह बैठा कि त्रैलोक्य में ऐसा और कौन है जो हम दोनों भाइयों का अनिष्ट कर सके ? तेरी तो गणना ही क्या।

इन्द्र

यह हो सकता है कि विधाता ने उन्हें ऐसा वर दे दिया हो कि तुम दोनों को तुम दोनों के सिवा और कोई न मार सकेगा।

कुबेर

यही बात है। इसी से युद्ध करना व्यर्थ समझकर आपको यह संवाद देने मैं वरुण जी के साथ चला आया हूँ।

वरुण

और यह भी मालूम हो गया है कि उन्होंने वर की बात गुप्त क्यों रक्खी थी।

इन्द्र

वह भी सुना दीजिए।

वरुण

हम लोगों पर विजय पाने के लिए ही उन्होंने अजेय वर प्राप्त किया है। परन्तु उन्होंने सोचा, कहीं ऐसा न हो कि हम लोग उन्हें अजेय समझ कर युद्ध से विमुख हो जायँ और उन्हें हम पर प्रहार करने का अवसर ही न मिले!

कार्तिकेय

आह! दानवी प्रकृति! प्रजापित के वर से पुष्ट हो कर दुष्टों का ऐसा साहस! किन्तु इसमें उनका क्या बल है?

इन्द्र

जाने दो, इस समय तो इसी बात का विचार होना चाहिए कि अब हमें क्या करना उचित है।

कुबेर

किसी प्रकार इन दोनों में परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाय तो अनायास ही हमारा काम सिद्ध हो जाय।

वरुण

(सदायता से)

किन्तु भाई भाई में विरोध उत्पन्न करा देना तो देव-स्वभाव के प्रतिकूल है।

पवन

वरुण जी बड़े ही आर्द्र-हृदय हैं। पर इसके सिवा और उपाय ही क्या है ?

अग्नि

और, दुष्टों के साथ दुष्टता करना भी तो राजनीति के प्रतिकूल नहीं।

कार्तिकेय

हम इसके लिए विवश भी तो हो रहे हैं। दुष्ट दैत्यों का जैसे नाश हो, अच्छा ही है। उनके अत्याचारों की बातें कौन नहीं जानता ? एक भी धार्मिक कार्य्य नहीं होने पाता; यज्ञ विध्वंस हो जाने से हमें अपना भाग नहीं मिलता; ऋषियों और मुनियों को पीड़ा पहुँचाई जाती है, प्राणियों का विनाश करना तो उनका कुल-व्रत ही है। ऐसी दशा में धर्म्म के लिए, लोक-रक्षा के लिए, सदाचार की मर्य्यादा के लिए उनके साथ कुटिल नीति का प्रयोग करना क्या अनुचित है ?

क्या यह अच्छा है कि पाप का किसी भाँति प्रतिकार न हो ?
लोक-नाश हो, त्रास-वास हो, सुकृतों का सञ्चार न हो ?
स्वेच्छाचारी रहें दुष्ट-गण, हमको कोई द्वार न हो ?
और शठों के साथ, विवश भी, शठता का व्यवहार न हो ?

वरुण

ठीक है, पर दैत्यों में विरोध कैसे उत्पन्न किया जा सकेगा ?

मनके साथ विचार-सा है दोनों का मेल।
छिन्न भिन्न करना उसे है क्या कोई खेल ?

अग्नि

यह निस्सन्देह चिन्ता की बात है।

इन्द्र

कुछ भी चिन्ता की बात नहीं। चलो, हम लोग ब्रह्मा जी के पास चलें वे ही इसका उपाय बतावेंगे:—

दिया जिन्होंने हम लोगों को यह संकट भरपूर—
बतला कर उपाय भी इसको वही करेंगे दूर।
रचते हैं जो महाप्रकम्पक शिशिर-सहित हेमन्त—
वही अन्त करते हैं उसका लाकर सरस वसन्त॥

सब

साधु ! साधु ! यह युक्ति निस्सन्देह बहुत अच्छी है।

कार्तिकेय

तो अब बिलम्ब किसलिए ? आप लोग ब्रह्मलोक को गमन कीजिए, तब तक मैं इधर का काम देखता हूँ।

इन्द्र

अब और कौन सा काम है ?

कार्तिकेय

सबको सान्त्वना देना, बिखरी हुई सेना को इकट्ठा करना और—

इन्द्र

और क्या ?

कार्तिकेय

और युद्ध जारी रखना ।

इन्द्र

अब युद्ध की क्या आवश्यकता है !

कार्तिकेय

क्षमा कीजिए, बड़ी आवश्यकता है:—

जब तक रहेगा बल हमारे एक अवयव में कहीं:—
तब तक विपक्ष-विरुद्ध अपना युद्ध रुक सकता नहीं ।
निश्चन्त सुख भोगे यहाँ वे और हम यों दुख सहें ,
यह हो नहीं सकता कि वे गरजा करें, हम चुप रहें !

सब

धन्य वीर ! धन्य ! यह कहना तुम्हारे ही योग्य है ।

इन्द्र

तो अब हम तुम्हारी चिन्ता के साथ चलते हैं ।

कार्तिकेय

आप निश्चिन्त होकर पधारें । चलिए, कुछ दूर मैं ही पहुँचा दूं ।

(सब जाते हैं)

चौथा अंक

(सुन्द, उपसुन्द और विकराल का प्रवेश)

सुन्द

विकराल, अब तो दैत्यकुल की अभिलाषा पूर्ण हुई ?

विकराल

इसमें क्या सन्देह ? ऐसे समर्थ स्वामियों के रहते हुए वह अपूर्ण कैसे रह सकती थी ?

उपसुन्द

कार्य्य तो हो गया, किन्तु हमारी लालसा पूरी न हुई—

भीत हो कर शत्रु भागे हैं सही—
दैत्य-कुल के भाग्य जागे हैं सही ।
किन्तु रण की लालसा ही रह गई ,
उमड़कर झट रक्त-धारा बह गई !

सुन्द

मैं भी यही कहता हूँ—

युद्ध में हम पूर्ण विजयी हो चुके ,
शत्रु-गण सर्वस्व अपना खो चुके ।
हो सकी पूरी न फिर भी कामना ,
तनिक तो वे भीरु करते सामना !

विकराल

पर शत्रु ऐसा क्यों करते ?
हमको अपना काल शत्रुओं ने है लेखा ,
तदपि हमारा पूर्ण समर-कौशल्य न देखा ।
भा सकता है भला किन्तु वह कौतुक किसको—
जीवन-संकट पड़े देखने जाकर जिसको ?

सुन्द

चलो, हमारे लिए यह अच्छा हो हुआ—
हम देवलोक में पैठ गये ,
इस इन्द्रासन पर बैठ गये ।
वे छिपे गुहाओं में भय से ,
हम हैं प्रसन्न ही इस जय से ।।

उपसुन्द

परन्तु अभी हमें इतना और करना है कि जो भूतलवासी ऋषि और मुनि यज्ञादि करके शत्रुओं को हव्य दे दे कर पुष्ट करते हैं उन्हें भी इस विद्रोहाचरण का दण्ड दे दिया जाय ।

सुन्द

अवश्य:—

वही बड़ा रिपु है जो रिपु को प्रश्रय देकर रहे सहाय,
जितना शीघ्र हो सके उसका करे सर्वथा दमनोपाय।
विष का वृक्ष काटकर उसको नष्ट समझ लेना है भूल—
जब तक फिर पनपाने वाला बना हुआ है उसका मूल॥

विकराल

कहावत है कि पीठ मारे, पर पेट न मारे। परन्तु शत्रुओं के लिए यही अच्छा है कि पीठ भी मारे और पेट भी। अतएव यह दण्ड-विधान उनके लिए उचित ही है।

उपसुन्द

शत्रुओं को तड़फाने से बढ़कर और कौन-सा आनन्द हो सकता है:—

छटपटा कर वे सभी भूखों मरें—
और हम आनन्द से शासन करें।
दैत्यकुल की साध पूरेगी तभी,
बन सकेंगे वे न विद्रोही कभी॥

सुन्द

परन्तु इस तुच्छ कार्य्य के लिए हमें कष्ट करना उचित नहीं। किसी योग्य सैनिक की अध्यक्षता में दानवों का एक दल भेज देना बहुत होगा।

विकराल

आप क्यों कष्ट करेंगे ? हम लोग किसलिए हैं ? चाहे जिसे आज्ञा दीजिए ।

सुन्द

तो तू ही बता, इस कार्य्य के लिए कौन नियुक्त किया जाय ?

विकराल

मेरी राय में तो हममें से कोई भी इस कार्य्य को कर सकता है । किन्तु जब आज्ञा मिली है तब मुझे कुछ कहना ही चाहिए । भयङ्कर नाम का एक सैनिक है । वह बड़ा ही राज-भक्त और उत्साही योद्धा है । वह अनायास ही यह काम कर सकता है ।

उपसुन्द

तूने बड़े ही उपयुक्त व्यक्ति का नाम बतलाया । निस्सन्देह भयङ्कर इस काम को बड़ी अच्छी तरह से कर सकेगा । मैं स्वयं युद्ध में उसकी वीरता देख चुका हूँ । यद्यपि उसकी गणना अभी साधारण सैनिकों में है, किन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि वह बड़े से बड़े काम का भार भी सँभाल सकता है । मैं आपही उसका आदर करना चाहता था ।

सुन्द

ऐसा है तो अवश्य उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए । क्योंकि:—

किया न जावे योग्य जनों का अभिनन्दन अथवा सम्मान—
तो उत्साह मन्द पड़ता है, विना तैल के दीप-समान।
अभिनंन्दन से वढ़ जाता है सबका ही उत्साह तुरन्त—
तृण उशीर भी नीर-सिक्त हो देता है सुगन्धि अत्यन्त॥

उपसुन्द

तो अभी उसे बुलवाता हूँ। विकराल, तू स्वयं जाकर उसे ले आ।

विकराल

जो आज्ञा।

(जाता है)

सुन्द

इस काम से निवट कर मेरी इच्छा होती है कि इन्द्र की इसी सभा में बैठकर एक वार अप्सराओं का नाच देखूं और गाना सुनूं।

उपसुन्द

अब इसके सिवा और करना ही क्या है ?
सभी मानते हैं सदा परम्परागत पर्व।
निज विजयोत्सव का हमीं कर सकते हैं गर्व॥

(विकराल के साथ भयङ्कर का प्रवेश)

भयङ्कर

(विकराल से)

यह सब आपके ही अनुग्रह का फल है कि मुझ जैसे तुच्छ सेवक पर भी स्वामियों की दृष्टि हुई।

विकराल

इसमें मेरा क्या, तुम्हारे गुणों ने ही स्वामियों का ध्यान आकर्षित किया है। देखो, वे तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भयङ्कर

(आगे बढ़कर)

स्वामियों की जय हो। यह तुच्छ सेवक सेवा में उपस्थित है।

सुन्द

भयङ्कर, तेरे गुणों से हम बहुत सन्तुष्ट हैं। आज से हमने तुझे अपने सहचरों में शामिल किया।

भयङ्कर

मैं किस योग्य हूँ, यह केवल स्वामियों की कृपा है। इससे अधिक सौभाग्य मेरे लिए क्या हो सकता है? आज मैं कृतार्थ हो गया।

उपसुन्द

तू इसी योग्य है। तेरी वीरता पर प्रसन्न होकर मैं अपने हाथ से तुझे यह खड्ग देता हूँ।

(देता है)

भयङ्कर

मिला आज जो है मुझे, यह गौरव का दान।
रक्खूंगा मैं सर्वदा, इसका पूरा मान॥

सुन्द

हमें इसका विश्वास है। इसी कारण आज तुझे एक विशेष कार्य्य सौंपा जाता है।

भयङ्कर

मैं तुच्छ किस योग्य हूँ? परन्तु स्वामियों के प्रताप से—

जो आज्ञा हो वही करूँगा,
महामृत्यु से भी न डरूँगा।
यम से भी सोत्साह लड़ूँगा,
पावक में भी कूद पड़ूंगा॥

सुन्द

यह कुछ न करना होगा। इस समय तोः—

हव्य-दान करके बहुविध जो भूतलवासी दुष्ट—
अपने वैरि-वृन्द को अब भी करते हैं परिपुष्ट।
उन राजद्रोही जीवों को देकर समुचित दण्ड,
फैलाना है पूर्णरूप से अपना तेज प्रचण्ड॥

इसलिए तू दानवों का एक दल लेकर इसी एक अवशिष्ट कार्य्य को और कर डाल।

भयङ्कर

जो आज्ञा:—

सिहों को मृग-वध-सदृश है यह तो सुख-भोग।
खेल और आजीविका दोनों का संयोग!

(जाता है)

(एक दैत्य का प्रवेश)

दैत्य

स्वामियों की जय हो। गुरु महाराज आ रहे हैं।

सुन्द

क्या गुरु महाराज आ रहे हैं? अच्छा।

(सब खड़े होते हैं)

(शुक्राचार्य्य का प्रवेश)

(सब प्रणाम करते हैं)

शुक्राचार्य्य

पाया है तुमने स्वयं विश्व-विजय-सुख-भोग।
दें आशीष विशेष क्या, रहो नित्य नीरोग॥

सुन्द

हम कृतार्थ हुए। यह सब आपके ही अनुग्रह का फल है:—

शिष्यों में जो विद्या-बल है
वह गुरुचरणों का ही फल है।
कैसे वे कृतित्व दिखलावें
गुरुजन जो न उन्हें सिखलावें?

शुक्राचार्य्य

तुम जैसे योग्य शिष्यों को पाकर आज हमारा असुर-गुरु होना सफल हुआ।

अब सुर-गुरु के सम्मुख हमको रहा न कुछ सङ्कोच,
मृतक-तुल्य ही थे हम अब तक करके जिसका सोच।
रहना होगा हमें न अब से अवनत मस्तक और,
है सजीवता का लक्षण बस स्वाभिमान सब ठौर॥

सुन्द

यह भी आप ही की कृपा का फल है:—
पाते हैं सहकार ज्यों वर वसन्त से बौर!
मिला हमें त्यों आपसे स्वाभिमान सिरमौर॥

शुक्राचार्य्य

किन्तु एक बात का ध्यान रखना।

सब

आज्ञा कीजिए, आज्ञा कीजिए।

शुक्राचार्य्य

शासन-समता पर सदा रखना समुचित दृष्टि।
तप का विषमोत्ताप ही लाता है घन-वृष्टि॥

सुन्द

इस विषय में हम सर्वथा सावधान रहेंगे।

शुक्राचार्य्य

एक बात और है।

सुन्द

आज्ञा ।

शुक्राचार्य्य

शत्रुजनों की ओर रहे दृष्टि अविचल सदा !
हैं जो दिन के चोर आँख बचाते हैं तनिक ।।

सुन्द

हमारी आँखें सर्वदा उन्हींकी ओर रहेंगी ।

शुक्राचार्य्य

ऐसा ही चाहिए । अच्छा, अब हम चलते हैं । इस समय तुम्हें भी विश्राम करना उचित है ।

सब

जो आज्ञा । प्रणाम ।

(शुक्राचार्य्य जाते हैं)

उपसुन्द

गुरु महाराज चले गये ! वृद्धों का स्वाभाव कुछ ऐसा हो जाता है कि वे एक बात को सौ सौ वार कहा करते हैं । निन्नानवे वार तो उन्होंने हमें यह उपदेश दिया होगा !

सुन्द

तो एक वार और सही ।

उपसुन्द

परन्तु:—

है धीरज का काम बड़ों की बातें सुनना ,
पढ़े-गुने को वार वार क्या पढ़ना-गुनना ?

सुन्द

तो भी:—

हाँ, हाँ, करते हुए हमारा क्या जाता है—

जो उनका मन इसी बात में सुख पाता है ?

उपसुन्द

सो तो किया ही गया है।

विकराल

(स्वगत)

कुशल हो, स्वामियों के मन में आज यह कैसे परिवर्तन दिखाई देता है !

(प्रकट)

किन्तु गुरु महाराज ने हमारी हित-कामना से ही ऐसा कहा है।

उपसुन्द

इसी से तो सुन लिया। पर तू ही बता, क्या हम इतना भी नहीं जानते ?

सुन्द

जाने दो इन बातों को। वह देखो, भयङ्कर आरहा है।

(भयङ्कर का प्रवेश)

भयङ्कर

स्वामियों की जय हो।

उपसुन्द

अरे, तू बहुत शीघ्र आगया ! तुझे जो कार्य्य सौंपा गया था उसे कर आया ?

भयङ्कर

स्वामियों का प्रताप ही ऐसा । उसके आगे वह कार्य्य कठिन ही कितना था जो विलम्ब होता ?

विकराल

सच है ।

सुन्द

भला कुछ सुना तो सही, कैसे और क्या किया ?

भयङ्कर

जाते ही, सबसे पहले:—

देवसम्बन्धी मखादिक कार्य्य नष्ट किये सभी,

सुन्द

और ?

भयङ्कर

हाड़ तक ऋषि-मुनि-जनों के अब न दीखेंगे कभी।

सुन्द

उन्होंने कुछ न किया ?

भयङ्कर

मनुज हाहाकार के अतिरिक्त क्या करते भला ?

उपसुन्द

धिक्कार है इस अपौरुष को।

भयङ्कर

प्राण उनके बच रहें सर्वस्व भी जावे चला !

विकराल

पर ऐसों के प्राण भी नहीं बच सकते।

भयङ्कर

जो बचे भी होंगे उनकी खोज हो रही है। सुना है ऋषियों और मुनियों ने भागकर देवताओं को शरण ली है।

सुन्द

पहले देवता ही तो अपनी खैर मना लें !

उपसुन्द

देवालय गिरवा दो और देवमूर्तियाँ तुड़वा दो।

भयङ्कर

यह तो हो ही रहा है। मैं एक विशेष कार्य्य से इस समय सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

सुन्द

वह कौन-सा कार्य्य है ?

भयङ्कर

हिमालय पर्वत पर ऋषियों और मुनियों के बहुत से आश्रम हैं। हैं क्या, थे कहना चाहिए।

सुन्द

अच्छा फिर ?

भयंकर

वहाँ गुफाओं में उनकी खोज हो रही थी कि अचानक एक गुफा में छिपी हुई दो अप्सरायें मिल गईं।

दोनों

(आतुरता से)

तब ? तब ?

भयंकर

तब मैंने उन्हें पकड़ लिया।

सुन्द

वे कहाँ हैं ?

भयंकर

मैं उन्हींको सेवा में उपस्थित करने के लिए आया हूँ। आज्ञा हो तो सामने लाऊँ।

सुन्द

तूने बड़ा अच्छा काम किया। आज तो हम अप्सराओं की खोज ही में थे, सो वे अनायास ही मिल गईं।

भयङ्कर

स्वामियों का प्रताप ही ऐसा है :—

होते हैं तेजस्विजनों के कार्य्य सफल यों अपने आप—
दिनकर के प्रताप से पानी खिंच जाता है बन कर भाप।

विकराल

इसमें क्या सन्देह :—

रहती है जय-सिद्धि तथा श्री स्वयं शूरवीरों के साथ।
लगते हैं मृगया में भी तो गजमुक्ता सिंहों के हाथ॥

उपसुन्द

हुआ, अब अप्सराओं को बुलाना चाहिए!

सुन्द

भयंकर, तू उन्हें शीघ्र ले आ।

भयंकर

जो आज्ञा।

(जाकर और उर्वशी तथा रम्भा के साथ आकर)

इधर, इधर, दानवेन्द्रों की सेवा में उपस्थित हो।

उर्वशी

(रम्भा से)

सखी, क्या भाग्य में यह देखना भी लिखा था? हाय! देवेन्द्र के सिंहासन पर दैत्यों का अधिकार! आज इस सभा में आने के पहले ही मेरा हृदय क्यों न फट गया!

रम्भा

सखी, धीरज धर। जो भाग्य में है देखना ही पड़ेगा। मेरी दशा भी तेरी ही जैसी है। पर क्या किया जाय ?

सुन्द

(देखकर)

अहो ! सुरलोक की रमणियों की सुन्दरता:—

उदासीनता और भीति भी मुख पर छाई,
छिपती नहीं परन्तु सहज शोभा सुघराई।

उपसुन्द

मधुप छिपाये हुए और होकर भी मलिनी—
सन्ध्या में भी किसे मोहती नहीं कमलिनी ?

विकराल

(स्वगत)

अहो ! इन्हें देखकर तो स्वामियों की दूसरी ही दशा होगई। मुझे तो आश्चर्य्य होता है कि तप के समय इन्होंने कैसे धीरज धरा होगा। अथवा वह समय ही और था और यह अवस्था ही और है !

उर्वशी

(रम्भा से)

हाय ! क्या दुष्टों की जय भी मनानी होगी ?

रम्भा

सखी, तू ठहर। मैं सब किये लेती हूँ।

उर्वशी

जो तू उचित समझे, कर।

रम्भा

(दोनों के प्रति)

विदित नहीं है आपके हमको शिष्टाचार।
क्षमा कीजिए, विनय का हुआ न कुछ व्यवहार॥

विकराल

मैं अभी बताये देता हूँ।

सुन्द

रहने दो, तुम्हारे ऐसा कहने से ही हमारा आदर हो गया। पर यह तो बताओ, तुम उदास क्यों हो? तुम्हें जिस तरह इन्द्र रखता था हम भी उसी तरह रक्खेंगे।

उपसुन्द

बल्कि उससे भी अच्छी तरह।

विकराल

सुन्दरियो, सुना? हमारे महाराज तुम पर कितना प्रसन्न हैं? तुम्हें और क्या चाहिए? और इन्द्र के पास अब है ही क्या? तुम्हें तो जिसका खाना उसका गाना।

उर्वशी

(स्वगत)

हा दुष्ट !

रम्भा

ठीक है, पर परन्तु दूसरी अवस्था में आने पर पहले पहल ऐसा होता ही है ।

सुन्द

अच्छा, चिन्ता दूर करके कुछ सुनाओ ।
नयन तुम्हारा कर चुके रम्य-रूप-रस-पान ।
पर अब आतुर हो रहे कुछ सुनने को कान ।।

उर्वशी

(स्वगत)

हाय ! रोने के समय गाना ! हे विधाता !

रम्भा

जो आज्ञा ।

(गान)

अरे मन ! मान न यों हठ ठान ।
जो तेरा है कब तक तुझ पर रख सकता है मान ?
जो कुछ है तेरी अभिलाषा
उसे नहीं कह सकती भाषा ।
पर हाँ, पूरी होगी आशा
यह तू निश्चय जान ।। अरे मन !

नये नये परिचय पावेगा
जो अभीष्ट है मिल जावेगा।
समय आप सब कुछ लावेगा
विधि का यही विधान ॥ अरे मन !
यों तो बाधा नहीं झिलेगी,
धीरज रख, सुख-शान्ति मिलेगी।
बनी रही तो कली खिलेगी
गूंज उठेगा गान ॥ अरे मन !
वही पूर्व का वास जहाँ है
चिन्ता का क्या काम वहाँ है ?
युक्ति बिना वह मुक्ति कहाँ है ?
अपने को पहचान ॥ अरे मन !

विकराल

यह गाना नहीं, दुःखित मन की सान्त्वना है।

रम्भा

कुछ दिनों में जब मन को शान्ति मिलेगी तब हम गाना भी गायेंगी।

सुन्द

नहीं, नहीं, तुमने बहुत अच्छा गाया और मन को भी अच्छे ढङ्ग से समझाया। हम—

(नेपथ्य में)

मारे गये ! मारे गये !

सुन्द

अरे कौन है ?

(एक दैत्य का प्रवेश)

दैत्य

स्वामियों की जय हो। समाचार अच्छा नहीं।

उपसुन्द

कहता क्यों नहीं, क्या है ?

दैत्य

जो दानव यज्ञादि नष्ट करने के लिए भेजे गये थे सब मारे गये !

सुन्द

ऐं, क्या कहा ? किसने हमसे शत्रुता करके अपना काल आप ही बुलाया है !

दैत्य

देवताओं का ही यह काम है। सुना है, देव सेनापति के साथ वे यहाँ आकर भी उत्पात करना चाहते हैं।

अप्सरायें

(स्वगत)

शीघ्र आवें।

उपसुन्द

(खड़े होकर)

अरे, निर्लज्जों की रण-लालसा क्या अब तक बनी हुई है ?

(नेपथ्य में कोलाहल)

सुन्द

यह क्या है ? तीक्ष्णदन्त ! देख, क्या है ?

तीक्ष्णदन्त

जो आज्ञा ।

(बाहर जाकर और आकर)

शत्रु आ पहुँचे हैं ।

उपसुन्द

अच्छा, कायरो !

तुम हुए हारकर जो न क्षान्त
तो अब मरकर हो शीघ्र शान्त ।
है मेरा यही प्रधान काम—
मिट जाय आज से शत्रु-नाम ॥

सुन्द

तांडित होकर भी जो फिर फिर—
कन्दुक-सदृश उठाते हैं सिर ।
उन्हें डुबाना होगा जल में ,
पल में बैठ जायँगे तल में ॥

उपसुन्द

यही किया जायगा । विकराल, तुम इन दोनों अप्सराओं

को यत्न से रक्खो। कुछ समय के लिए हमें इनके मधुर गान से वञ्चित रहना पड़ेगा।

विकराल

जो आज्ञा।

(सब जाते हैं)

——

पाँचवें अङ्क का विष्कम्भक

(रति के साथ इन्द्राणी का प्रवेश)

इन्द्राणी

(गीत)

मेरा वह नयनाभिराम वर वैजयन्त-सा धाम कहाँ,
कल्पलताकुञ्जों से शोभित दिव्य नन्दनाराम जहाँ।
हाय विधाता ! दैत्य दस्यु अब करते हैं विश्राम वहाँ,
और रुदन भी कठिन हुआ है हमको आठों याम यहाँ !

रति

महारानी, आप इतना सोच क्यों करती हैं ये दिन सदा न रहेंगे:—

पड़ता है सब पर समय पर अस्थिर है ज्ञात।
आते जाते हैं सदा सन्ध्या और प्रभात॥

इन्द्राणी

सखी, क्या कहूँ:—

सत्वर ही वह सब विभव हुआ स्वप्न-साहाय।
इन्द्राणी होकर हुई मैं ऐसी असहाय ?

रति

आपका वह विभव कहाँ जा सकता है:—

चारु चन्द्रिका की छटा सघन घटा ले रोक ।
किन्तु अन्त में फिर वही अमृत भरा आलोक ।।

इन्द्राणी

न जानें वह शुभ घड़ी कब आवेगी ।

(नेपथ्य में)

अब विलम्ब नहीं है ।

दोनों

(चौंक कर)

ऐसा ही हो ।

(मेनका का प्रवेश)

इन्द्राणी

(देखकर)

क्या मेनका है ? आ सखी, तू अच्छे समय पर आई ।

मेनका

(आगे बढ़कर)

महारानी की जय हो । रति देवी की जय हो ।

इन्द्राणी

रहने दे, यह उपचार तो बहुत हुआ:—

जो कहती थी वह वही पाऊँ जिससे त्राण।
कानों में हैं आगये उत्सुक होकर प्राण॥

मेनका

बस अब कार्य्य-सिद्धि होना ही चाहती है।

इन्द्राणी

तेरी बात सच निकले। कह क्या समाचार हैं?

मेनका

महारानी यह तो सुन ही चुकी हैं कि देवताओं के साथ महाराज ब्रह्मलोक को गये हैं।

रति

हाँ, और यह भी सुना है कि देव सेनापति ने बहुत से दानवों को मारकर शत्रुओं में हलचल मचादी है।

इन्द्राणी

पर पहले तू ब्रह्मलोक की ही बात सुना।

मेनका

जो आज्ञा। वहाँ पहुँचकर सबने प्रजापति को प्रणाम करके प्रार्थना की और भगवान् सुरगुरु ने अपनी ओजस्विनी भाषा में दैत्यों के अनाचार का वर्णन किया।

इन्द्राणी

फिर?

मेनका

फिर देवराज ने उनसे कहा कि आपने दानवों को ऐसा वर-प्रदान किया है कि वे अपने अतिरिक्त और किसीके हाथ से मर ही नहीं सकते ! अब कृपा करके आप ही कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे यह कण्टक दूर हो। नहीं तो लोकों की रक्षा नहीं।

इन्द्राणी

तब भगवान् लोकेश ने क्या कहा ?

मेनका

देवताओं की ऐसी दुरवस्था देखकर उन्होंने सबको धीरज दिया और उनके मङ्गल की कामना से प्रेरित होकर कहा कि दैत्य अपने तप का फल पा चुके। अब अपने अनाचारों का फल भी पावेंगे। हम अभी इसका उपाय करते हैं।

दोनों

उनकी जय हो।

इन्द्राणी

उन्होंने क्या उपाय किया ?

मेनका

विश्वकर्म्मा को बुलाकर उन्होंने आज्ञा दी कि शीघ्र ही एक विलक्षण सुन्दरी मूर्ति बनाओ।

इन्द्राणी

भला फिर ?

मेनका

फिर विश्वकर्म्मा ने अपने अद्भुत कौशल से, सारे सुन्दर पदार्थों का तिल तिल भर सौन्दर्य्य-सार संग्रह करके एक अपूर्व सुन्दरी मूर्ति निर्मित की।

इन्द्राणी

तब ?

मेनका

तब भगवान् लोकेश ने उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके स्वयं ही उसका नामकरण किया।

इन्द्राणी

क्या नाम रक्खा ?

मेनका

तिलोत्तमा। उस समय :—

देख अलौकिक उसकी सुषमा
जँची नहीं कोई भी उपमा।

और दूसरों की तो बात ही क्या :—

सहस्राक्ष बन कर सुरनायक—
देखा किये रूप सुखदायक !

(आश्चर्य्य से)

दोनों

हाँ, ऐसा हुआ !

रति

देवकुल के कल्याण के लिए जो हो अच्छा ही है।

इन्द्राणी

फिर ?

मेनका

फिर भगवान् लोकेश ने तिलोत्तमा को कौशल से शत्रुओं का नाश करने की आज्ञा दी और वह अभी अभी विन्ध्याचल की ओर गई है। क्योंकि दैत्य अपने सहचरों के साथ वहीं विचरण कर रहे हैं।

इन्द्राणी

देखूं अब क्या होता है।

रति

देवि ! आप यह क्या कहती ?

देखे समुचित यत्न सफल होते सभी,
　　विधि का किया उपाय व्यर्थ होगा कभी ?
आ पड़ने पर किन्तु अचानक आपदा—
　　अस्थिर मन सन्देह किया करता सदा ॥

इन्द्राणी

सचमुच मुझसे भूल हुई । क्या करूं, मन को बहुत समझाती हूँ पर वह आशङ्का नहीं छोड़ता । भगवान् लोकेश मुझे क्षमा करें । जो सबका विधान करते हैं उनका विशेष विधान कभी व्यर्थ नहीं हो सकता । तो आओ, हम कुछ फूल चुनकर उनकी पूजा करके देवकुल के कल्याण की प्रार्थना करें ।

(सब जाती हैं)

पाँचवाँ अंक

(तिलोत्तमा का प्रवेश)

तिलोत्तमा

(आप ही आप)

मैं पहुँची तो ठीक समय पर। इधर वसन्त का विकास भी हो गया। विन्ध्याचल ने भी नया रूप-रङ्ग धारण किया है। अहा ! कैसा अपूर्व सृष्टि-सौन्दर्य है:—

(गान)

खिलती हुई कुसमावली को चपल अलि-दल चूमता,
शीतल सुगन्ध समीर भी है धीर गति से घूमता।
मद-तुल्य झरनों के अमल जल में कमलकुल हँस रहा,
वर विन्ध्य गिरि भी आज मानो मत्त गज-सा झूमता॥

सब बातें अनुकूल हैं। बस, अब उन दोनों दानवों के इधर आने का ही विलम्ब है। आज मैं दिखला दूंगी कि:—

सब यत्न विफल हो गये जहाँ—
मैं हुई पूर्ण कृतकार्य्य वहाँ।

देखें अबला-बल आज सभी ,
उसको कुछ दुष्कर नहीं कभी ॥

(सुन्द और उपसुन्द का प्रवेश)

तिलोत्तमा

(देखकर)

अहो ! यही हैं वे दोनों दानव !
भरे हुए मदरूपी जल से ।
घूम रहें हैं दो बादल-से ।

अब,

दोनों ओर मुझे सव्रीड़ा
करनी है चपला-सी क्रीड़ा ॥

उपसुन्द

चाहिए तो कि शत्रु अब सदा के लिए चुप होकर बैठ रहें । जब वे हमारा कुछ कर ही नहीं सकते तब क्यों बार बार अपना अपमान कराते हैं ?

सुन्द

परन्तु मुझे तो विश्वास नहीं होता कि शत्रु चुप हो बैठेंगे। वे अवश्य ही हमारे विरुद्ध कोई न कोई षड्यन्त्र रचते ही रहेंगे । देवता कभी निरुद्योगी नहीं रह सकते ।

खोकर निज सर्वस्व कौन निश्चिन्त रहेगा ?
निज विपक्ष कृत कौन मौन अपमान सहेगा ?
पूर्व स्थिति का सोच बैठने देगा किसको ?
अपने से ही हमें समझना होगा इसको ॥

उपसुन्द

हो सकता है। परन्तु इससे होगा क्या ?

सुन्द

कुछ तो होगा ही। यह दूसरी बात है कि हम उसे कुछ न समझें। परन्तुः—

रिपु चाहे जैसा तुच्छ रहे,
पर उसको कौन उपेक्ष्य कहे ?
आ जाय मशक भी एक कहीं—
तो रहती सुख की नींद नहीं ॥

उपसुन्द

जब जो होगा देख लेंगे। अभी से आगे के लिए चिन्ता करके मस्तक को विकृत बनाने से क्या लाभ ?

सुन्द

मस्तक तो यों ही विकृत हो रहा है। सचमुच आज की मदिरा बड़ी ही मधुर थी। मादकता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती हैः—

घूम रहा है चक्र सा सिर किंवा संसार।
चकराती है चेतना भार हुआ तनु-भार !

उपसुन्द

यह हाल तो मेरा भी है। इसलिए आओ जरा इस ओर घूम कर मन को हरा करें।

(दोनों घूमते हैं)

उपसुन्द

यह देखो—

हम दोनों के तप का साक्षी है वह गिरिवर विन्ध्य यही ,
सम्प्रति उपवन में परिणत है इसकी यह वनराजि वही ।

सुन्द

देखता हूँ—

पुष्पाभरणा प्रकृति सुन्दरी आज हरा पट पहन रही ,
दूर्वाङ्कुर धारण कर मानो रोमाञ्चित हो रही मही ।।

तिलोत्तमा

(आप ही आप)

मेरे लिए यह और भी सुन्दर सुयोग है कि इस समय ये दोनों मदोन्मत्त हो रहे हैं। सुरा और सुन्दरी दो ही तो प्राणियों को पागल बनाने की शक्ति रखती हैं। तो किस कौशल से कार्य्य साधन करूँ।

(सोचकर)

चलूँ, इस पासवाले लता-कुञ्ज में बैठकर फूलों की एक माला गूंथते गूंथते इस विषय में विचार करूँ। फिर जो उचित समझूंगी करूँगी।

(वैसा ही करती है)

उपसुन्द

स्वप्न की तरह मुझे कुछ कुछ याद पड़ता है कि यह

वही स्थान है जहाँ हमारी तपस्या के समय अप्सराओं ने अनेक लीलायें की थीं।

सुन्द

यद्यपि इस समय मेरी चेतना शक्ति मूर्च्छित-सी हो रही है, तो भी वह दृश्य मानो आँखों के सामने घूम रहा है।

उपसुन्द

परन्तु आज तो यहाँ कोई अप्सरा नहीं दीखती।

तिलोत्तमा

(आप ही आप)

मैं जो बैठी हूँ।

(स्वर भरती है)

उपसुन्द

(चौंककर)

यह क्या है ?

सुन्द

अरे, ठहर, सुनने दे।

तिलोत्तमा

(गाना)

आओ, हे जीवन-धन ! आओ ;

प्रकट भाव से आगे आकर अपना रूप दिखाओ।

छिप न सकोगे यहीं कहीं हो, अब न आपको और छिपाओ,

किसकी यह आगमन सूचना होती है मुझको समझाओ।
किसके गीत गा रहे हैं ये विविध विहङ्ग, ध्यान में लाओ,
किसके कलित गुणों की तूती बोल रही है तुम्हीं बताओ।
श्वास-सुगन्धित तुम्हारी ही यह फैल रही है भूल न जाओ,
खड़ी प्रकृति पुष्पाञ्जलि लेकर अब तो अपनों को अपनाओ॥

दोनों

(स्तब्ध होकर)

मरी किन्नरी, कोकिला, वंशी, वीणा-तान।
सुन पड़ता है आज यह किसका नूतन गान ?

तिलोत्तमा

(स्वगत)

तुम्हारी मधुर मृत्यु बोल रही है।

दोनों

(आगे बढ़कर और तिलोत्तमा को देखकर)

अहो ! यह कौन है !

सुन्द

रूप के समुद्र की रमा-सी यह कौन यहाँ,

उपसुन्द

सारी सुघराई का इसी में एक वास है।

सुन्द

कोमलता कञ्ज की है, कान्ति है कलाधर की,

उपसुन्द

स्वर्ण की सुवर्णता, लताओं का विलास है॥

सुन्द

गति में मरालता है, भौंहों में करालता है ;

उपसुन्द

अलकों में अरालता, कपोलों में विभास है ।

सुन्द

अङ्गों में उमङ्ग अहा ! आँखों में अनङ्ग-रङ्ग ,

उपसुन्द

मुख में सु-हास और श्वास में सु-वास है ॥

सुन्द

(पास जाकर)

हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ?

उपसुन्द

और यहाँ किसलिए बैठी हो ?

सुन्द

तनु तुम्हारा है मनोहर हेम-कोट ,

उपसुन्द

अतनु मन्मथ को मिली है आज ओट ।

सुन्द

अब जिधर चाहे करे वह वीर चोट ,

उपसुन्द

हो गया मैं तो स्वयं ही लोट पोट !

तिलोत्तमा

हे वीरो ! तुम अच्छे आये। मैं कौन हूँ, इस प्रश्न को अभी रहने दो। सम्प्रति मैं बड़े संकट में पड़ी हूँ।

सुन्द

मैं तुम्हारा सब कष्ट दूर कर दूँगा।

उपसुन्द

मुझसे कहो, तुम पर कैसा संकट आ पड़ा है ?

तिलोत्तमा

अन्यायी शत्रुओं ने मेरे स्वजनों को अपने अधिकार से वञ्चित कर दिया है।

सुन्द

मैं तुम्हारे सब शत्रुओं को मार डालूँगा।

उपसुन्द

मैं तुम्हारे स्वजनों को जितना अधिकार वे चाहें दूँगा। तुम अपनी बात पूरी करो।

तिलोत्तमा

अपने आत्मीयों की दुर्दशा देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि संसार में शक्ति ही सब कुछ है। मैं अबला ठहरी। इसलिए मैंने प्रतिज्ञा की है कि जो सबसे अधिक शक्तिशाली पुरुष होगा उसीको यह वर-माला पहनाकर मैं अपना पति बनाऊँगी।

(माला दिखलाती है)

सुन्द

तो मुझसे अधिक शक्तिशाली और कौन हो सकता है ? मैं सुन्द हूँ। मैंने युद्ध में इन्द्र को भी पराजित किया है !

उपसुन्द

हे सुन्दरी ! तुम बिना कुछ विचार किये ही यह माला मुझको पहना दो। मेरा नाम उपसुन्द है। इन्द्र की तो बात ही क्या, उपेन्द्र को भी मैं कुछ नहीं समझता।

तिलोत्तमा

हे वीरो ! तुम दोनों ही प्रसिद्ध बली हो। मैं कैसे समझूं कि तुम दोनों में से किसमें विशेषता है।

सुन्द

(हाथ पकड़कर)

मैं ज्येष्ठ हूँ अतएव तुम मेरी हो।

उपसुन्द

(दूसरा हाथ पकड़ कर)

ज्येष्ठ होने से ही कोई श्रेष्ठ नहीं हो सकता। अवस्था में बड़ा होना तो दैवाधीन है, गुणों में बड़ा होना ही सच्चा बड़प्पन हैं। इस विचार से तुम मेरी हो।

(दोनों अपनी अपनी ओर खींचते हैं)

तिलोत्तमा

तुम दोनों का ही कहना ठीक हो सकता है, पर मेरा प्रण

है कि मैं अद्वितीय शक्तिशाली पुरुष को ही वरण करूँगी। तुम दोनों मुझे अपनी अपनी ओर खींचकर क्यों कष्ट दे रहे हो ? क्या यही तुम्हारी शक्तिशालीनता का परिचय है !

सुन्द

(क्रोध से)

अरे उपसुन्द ! यह तू क्या कर रहा है ? यह तेरी भाभी है।

उपसुन्द

यह मेरी भाभी है या तुम्हारी बहू ? हाथ छोड़ दो।

सुन्द

(गरजकर)

अरे कुलाङ्गार ! तेरा इतना साहस ! जो तेरे लिए माता के समान पूज्य है उस मेरी पत्नी का तू मेरे ही सामने हरण करना चाहता है।

उपसुन्द

(उसी प्रकार)

रे दुष्ट ! मेरा ही अपकार करके तू उलटा मुझी को दोष देता है ? अच्छा,

(तिलोत्तमा से)

हे सुन्दरी ! तुम क्षण भर अपेक्षा करके स्वयं देख लो कि तुम्हारी इस वर माला का कौन अधिकारी है।

(युद्ध)

तिलोत्तमा

(स्वगत)

अहो ! अब इन दोनों का विरोध बढ़ गया ।

(प्रकट)

हे वीरो ! तुम दोनों की खींचातानी में पड़कर मेरे अङ्ग पीड़ित हो रहे हैं । इसलिए मैं यहाँ खड़ी न रह सकूँगी । पास वाले इस लता-मण्डप में बैठकर तुम्हारी वीरता देखती हूँ ।

(वैसा ही करती है)

(घबराये हुए विकराल और भयङ्कर का प्रवेश)

विकराल

निस्सन्देह यह सिंहनाद होकर भी हमारे स्वामियों का परस्पर गर्जन तर्जन है । दैव कुशल करे । आज उन्होंने बहुत मद्यपान किया है ।

भयङ्कर

(देखकर)

हाय ! हाय जिसकी आशङ्का थी वही हुआ ।

विकराल

(आगे बढ़कर)

हे दानवेन्द्र ! यह क्या ? यह क्या ? शान्त हूजिए । शान्त हूजिए ।

सुन्द

विकराल ! इस समय तू कुछ न बोल । मैं इस कुलाङ्गार को कभी क्षमा न करूँगा ।

उपसुन्द

भयङ्कर ! तू देख, मैं इस अनाचारी का वध करके अभी शान्त होता हूँ ।

(परस्पर प्रहार और पतन)

भयङ्कर

हाय ! हाय !

अन्धकारमय हो गया यह संसार समस्त ।
सूर्य्य-चन्द्र दोनों अहो ! हुए हमारे अस्त ।।

विकराल

हे दानवेन्द्र ! हे शत्रुओं को रुलाने वाले ! हे विश्वविजयी ! हे स्वामी ! उत्तर दो, यह क्या है ?

जो जीतकर वैरी सभी—
इन्द्रासनस्थित थे अभी ।
वे तुम अभी शोणित-सने
क्यों धूलिशायी हो बने ?

सुन्द

विकराल ! भयङ्कर ! अब आक्षेप व्यर्थ है । जो होना था सो हो गया । हम दोनों भाइयों के पुत्रों को लेकर कुछ कर

सको तो करना; हमसे तो कुछ भी न हो सका ! उनकी रक्षा का भार तुम पर है।

दोनों

हे नाथ ! हमारी रक्षा का भार किसे सौंपते हो ?

उपसुन्द

हाय ! मदोन्मत्त होकर हम शत्रुओं से छले गये।

(मृत्यु)

दोनों

हाय ! हाय ! हे स्वामी, कहाँ जाते हो ?

सुन्द

वत्स उपसुन्द ! तनिक ठहरो, हम भी चलते हैं। विकराल ! भयङ्कर ! सुनो,

बस आपस की फूट का है यह दुष्परिणाम।
सफल काम वैरी हुए करके इतना काम॥

भयङ्कर

हे नाथ ! कुछ कारण भी तो होना चाहिये।

सुन्द

कारण ?

कारण है उस मोह का रमणीधन का लोभ।
और मद्य की मोहिनी मादकता का क्षोभ॥

विकराल

यह सब हम लोगों के फूटे भाग्य का ही दोष है।

सुन्द

नहीं, नहीं, इसमें भाग्य फूटने की कोई बात नहीं। यह केवल फूट का ही फल है। इसलिए तुमसे हमारा अन्तिम अनुरोध यही है कि हमारे समाधि-मन्दिरों की ऊँची ऊँची पताकाओं पर, सबसे पढ़े जाने योग्य, बड़े बड़े अक्षरों में लिखवा देना कि:—

सुन्द और उपसुन्द का है सब से अनुरोध।
सावधान, देखो, कभी उठे न बन्धु-विरोध॥

(मृत्यु)

भयङ्कर

हे नाथ! सुनते जाओ, सुनते जाओ, मैं ही अपने उष्ण रक्त से तुम्हारी यह आज्ञा लिख दूंगा।

विकराल

हाय! अब नाथ कहाँ?

(दनों रोते हैं)

तिलोत्तमा

(आप ही आप)

अहो! अनिष्ट अनिष्ट ही होता है। यद्यपि ये दोनों प्रचण्ड

शत्रु थे और इनका मारना ही अभीष्ट था तो भी यह दुष्परिणाम देखकर खेद ही होता है।

विकराल

हुए आज असहाय हम डूबे सभी उपाय।

भयङ्कर

हाय! हाय! करना हमें शेष रह गया हाय!

(नेपथ्य में कोलाहल)

विकराल

(सुनकर)

यह तो दानवों का हाहाकार और देवताओं का जय-जय कार है! हे दानवेन्द्र! तुम कहाँ हो?

बनी चिता भी है नहीं अभी तुम्हारी नाथ
और पराजित शत्रुगण लगे दिखाने हाथ!

तिलोत्तमा

(आप ही आप)

कैसी कारुणिक पुकार है!

भयङ्कर

(आंसू पोंछकर)

अब इस अरण्यरोदन से क्या होना है? स्वामियों के शरीरों की रक्षा करके उनका संस्कार करना ही हमारा पहला कर्त्तव्य है।

विकराल

दग्ध दैव जो कुछ करावेगा. करना पड़ेगा।

(इन्द्रादि देवताओं का प्रवेश)

इन्द्र

ठीक है, देव सेनापति से कह दो कि अब दैत्यों को न मारें। अनाथ किंवा निस्सहाय शत्रुओं को मारना अनुचित है।

(विकराल और भयङ्कर के प्रति)

हे दानवो ! तुम न घबराओ। तुमसे इस समय हमारा कोई विरोध नहीं। इसलिए हमने देव-सेना को रोक दिया है। वह तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न करेगी। दुःख में हम किसीसे शत्रुता नहीं रखते, सहानुभूति ही रखते हैं। इसलिए तुम यथा-रीति अपने स्वामियों के शव-संस्कार का आयोजन करो। उनका सम्मान करने के लिए हम लोग भी तैयार हैं।

विकराल

हे देवराज, जो हम लोगों के अदृष्ट में था सो हुआ। हमारे मृत स्वामियों का सम्मान करने को कहना ही हमारे निकट तुम्हारी वीरता का प्रकृत परिचय है।

(भयङ्कर से)

भयङ्कर, तुम कुछ दानवों को बुला लो।

(भयङ्कर वैसा ही करता है और सब दैत्य मिलकर सुन्द और उपसुन्द के मृत शरीरों को उठाकर ले जाते हैं)

तिलोत्तमा

(आगे बढ़कर)

देवराज की जय हो, सब देवताओं की जय हो।

इन्द्र

(आदरपूर्वक)

तिलोत्तमे, सचमुच तूने बड़ा काम किया:—
करके दग्ध विपक्ष रूप-शिखा की ज्योति में।
सुरकुल की प्रत्यक्ष जयलक्ष्मी तू ही हुई॥
इसलिए बता, हम तेरा क्या हित करें ?

तिलोत्तमा

मैं कृतार्थ हुई। यह सब देवराज ही की कृपा है। फिर भी यदि आप प्रसन्न हैं तो भरत का यह वाक्य पूरा होने दीजिए:—

(गान)

बरसे प्रेम रूप पयोद,
प्रबल ईर्ष्यानिल बुझादे विनयजल सविनोद।
हरी धरती रहे भरती क्षेम से निज गोद,
और हिलमिल कर अखिल जन सतत पावें मोद॥

इन्द्र

तथास्तु।

(सब जाते हैं)

समाप्त

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 4662.6
Date 5.12.74
SIMLA

Library IIAS, Shimla
H 811.42 G 959 T
00046626